प्रकाशक
प्रताप गुप्त
राजीव प्रकाशन
शान्ति कुटीर, लूकरगंज
इलाहाबाद

मूल्य २।।।)

मुद्रक
प्रताप गुप्त
साहु-सूर्य प्रेस
शान्ति कुटीर, लूकरगंज
इलाहाबाद

मेरी दुनिया

मेरी दुनिया

सम्पादक

महमूद अहमद 'हुनर'

प्रकाशक

असोशियेटेड पब्लिशर्स

शान्ति कुटीर, लूकरगंज

इलाहाबाद

[मूल्य २)

प्रकाशक
प्रताप गुप्त
असोशियेटेड पब्लिशर्स
शान्ति कुटीर, लूकरगंज
इलाहाबाद

यू० पी० विक्रेता
प्रयाग प्रकाशनालय
हेविट रोड, इलाहाबाद

मुद्रक
प्रताप गुप्त
साहु-सूर्य प्रेस
शान्ति कुटीर, लूकरगंज
इलाहाबाद

[दूसरा संस्करण]

लेखक—

ख़्वाजा अहमद अब्बास

अहमद नदीम क़ासिमी

महेन्द्र नाथ

बलवन्त सिंह

शफ़ीक़ुर्रहमान

सआदत हसन मन्टो

ओंकार शरद को—
जिसके स्वभाव में बचपन लेकिन क़लम
में जवानी है।

—'हुनर'

कहानियों की कहानी

प्रस्तुत पुस्तक में जो कहानियाँ संकलित की गई हैं उनके लेखक यद्यपि उर्दू के हैं लेकिन हिन्दी के लिये भी वे नये नहीं हैं। ख्वाजा अहमद अब्बास अंग्रेजी और उर्दू में समान ख्याति के मालिक हैं पर हिन्दी में अपना मासिक 'सरगम' निकालकर उन्होंने जो इनक़लाबी क़दम उठाया है उससे वे हिन्दी के ही हो गये हैं। 'अजन्ता की ओर' नामक उनका एक कहानी-संग्रह और 'अंधेरा उजाला' नामक एक उपन्यास भी हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है तथा 'अवध की शाम' एक कहानी संग्रह प्रेस में है।

अंग्रेज़ी में पत्रकार के रूप में उनकी विशेष ख्याति है किन्तु हिन्दी उर्दू में वे कहानी लेखक के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग पत्रकारिता को उनका दोष मानते हैं लेकिन वास्तव में उनका यही गुण है जिसके कारण उन्होंने समय की हर मांग की पूर्ति की है। देश की हर महत्वपूर्ण घटना को उन्होंने कहानी के रूप में ढालकर इतिहास का अमिट अंश बना दिया है। देश का स्वाधीनता-संग्राम हो या किसान-मजदूर आन्दोलन, बंगाल का अकाल हो या बम्बई के साम्प्रदायिक दंगे, काश्मीर पर पाकिस्तानी गुन्डों का आक्रमण हो या पंजाब और दिल्ली में धर्म के नाम पर भारतीयों की आपस की लड़ाई, अब्बास का क़लम हर विषय पर उठा है और उन्होंने हर घटना की सच्ची, सजीव और सफल तस्वीर हमारे सामने रख दी है।

३० जनवरी १९४८ को दिल्ली में जो घटना घटी उसने भारत को ही नहीं समस्त विश्व को झँझोड़ कर रख दिया था। देश पिता महात्मा गांधी की हत्या पर हिन्दी की भांति उर्दू का भी प्रत्येक साहित्यिक रोया। शायद उर्दू में किसी घटना पर इतना नहीं लिखा गया जितना बापू के बलिदान पर लिखा गया और अब तक लिखा जा रहा है।

'एक बच्चे का ख़त महात्मा गांधी के नाम' बापू पर लिखी गई उर्दू रचनाओं में सबसे सफल रचना है। अब्बास की यह कहानी भी उतनी ही अमर है जितना बापू का व्यक्तित्व, क्योंकि इस रचना में उन्हीं अमर-तत्वों का विकास है जिनका पुँजी-भूत स्वरुप बापू का व्यक्तित्व था।

अहमद नदीम क़ासिमी उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार हैं। इनकी भी ८० प्रतिशत कहानियाँ हिन्दी में आ चुकी हैं। 'मेरा देश' के नाम से एक कहानी-संग्रह भी हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है।

नदीम जितने अच्छे कथाकार हैं उतने ही अच्छे कवि भी। उनके पास कवि का भावुक हृदय भी है और कथाकार की तीक्ष्ण दृष्टि भी। यद्यपि उनकी अधिकांश कहानियाँ पंजाब के एक विशेष प्रदेश के ग्रामीण जीवन से सम्बन्ध रखती हैं लेकिन 'उनके जिगर में सारे जहान का दर्द' है। ज़मींदारों और महाजनों द्वारा शोषित पंजाब के किसान के प्रति उनके हृदय में जो सहानुभूति है वही सहानुभूति उन्हें भारत, चीन और स्पेन के किसानों से भी है। नदीम की कहानियों का किसान विश्व भर में रहने वाले किसान का प्रतीक है और इसी प्रकार जब वे पंजाब के ज़मींदार और महाजनों के अत्याचारों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हैं तो वह आवाज़ दुनिया भर के पूँजी-पतियों और शोषकों के ख़िलाफ़ होती है।

'हीरोशीमा से पहले—हीरोशीमा के बाद' कहानी पंजाब के ग्रामीण जीवन से सम्बंधित है पर वास्तव में इस कहानी के द्वारा 'नदीम' ने हर उस कुटुम्ब, हर उस परिवार और हर उस ग्राम का अत्यन्त सफल चित्रण किया है जहाँ के नवयुवक देश-भक्ति या राजभक्ति की भावना से प्रेरित होकर नहीं बल्कि अपने पेट, भूख और ग़रीबी से लाचार होकर, दूसरों के लिये अपने सर हथेली पर रख, रण भूमि में जाते हैं। कितने ही रण क्षेत्र में शत्रु की तोपों और बमों का निशाना बनकर अपने बच्चों को यतीम और स्त्रियों को विधवा बना जाते हैं और कितने ही जब दूसरों के बच्चों को अनाथ और स्त्रियों को विधवा बनाकर लौटते हैं तो अपने घर को वीरान पाते हैं। उन्हें पता चलता है कि उनकी पत्नी वर्षों उनकी प्रतीक्षा करती रही और अन्त में किसी पड़ोसी युवक के साथ शहर भाग गई है और उनका बच्चा उनके जीवित रहते ही अनाथालय में भरती हो चुका है।

युद्ध पर लिखी गई कहानियों में 'नदीम' की इस रचना को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

महेन्द्रनाथ उर्दू के सबसे बड़े कहानीकार श्री कृष्ण चन्दर के छोटे भाई हैं। ख़्वाजा अहमद अब्बास ने उनके इस सम्बन्ध पर लिखा है—"महेन्द्रनाथ कृष्ण चन्दर का छोटा भाई न होता तो उर्दू साहित्य में उसका और बड़ा नाम होता। अपने बड़े भाई की वजह से महेन्द्र को साहित्य में भी छोटे भाई का स्थान मिलता है।" और यह बिलकुल सही भी है। महेन्द्रनाथ ने इस रिश्ते से कभी लाभ नहीं उठाया। आरम्भ में महेन्द्र की कला पर कृष्ण चन्दर का प्रभाव दिखाई पड़ा किन्तु आगे चलकर महेन्द्र नाथ ने अपना एक अलग रास्ता चुन लिया और आज भी वे उसी मार्ग पर आगे बढ़ते जा रहे हैं।

महेन्द्रनाथ स्वयं मध्यम वर्ग में पैदा हुए इसलिये वे मध्यम

वर्ग की समस्याओं, उसकी आवश्यकताओं और उसकी कठिनाइयों से भली भाँति परिचित हैं। अपने मध्यम श्रेणी के पक्के मकान में बैठकर उन्होंने मज़दूरों की झोंपड़ियों का चित्रण करने की अपेक्षा यही उचित समझा कि वे उसी दुनिया की कहानियाँ लिखें जिसमें वे रहते-बसते हैं। इस दुनिया में कहानियों के लिये सामग्री की कमी नहीं थी, और महेन्द्रनाथ मध्यम वर्ग के चरित्रों को लेकर हमारे सामने उनकी समस्यायें रखने लगे।

'मेरी दुनिया' कहानी में महेन्द्र नाथ ने आशियाना बिल्डिंग और उसके भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के निवासियों का जिस कुशलता से चित्रण किया है उससे उनकी भावी प्रगति का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। यह कहानी महेन्द्रनाथ की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है।

'पंजाब का अलबेला' कहानी के लेखक सरदार बलवन्त सिंह एक सिक्ख युवक हैं। बलवन्तसिंह मेरे पहले सिक्ख दोस्त हैं। उनसे पहले मैं किसी सिक्ख के सम्पर्क में न आया था। सिक्खों के प्रति मेरे मन में जो धारणायें थीं वह सरहदी पठानों के प्रति धारणाओं से बहुत मिलती-जुलती थी। सिक्ख बड़े ज़ालिम होते हैं, सिक्ख अक्खड़ होते हैं, सिक्ख बात-बात पर कृपाण निकाल लेते हैं, जान लेना और जान देना उनके लिये खेल है, उनके मन में तनिक भी दया नहीं होती, बड़े निर्दयी होते हैं इत्यादि इत्यादि। पर बलवन्तसिंह से जब मैं मिला, उनके पिता सरदार लाभसिंह और उनके यहाँ आने-जाने वाले दूसरे सिक्खों से जब मेरी मुलाकात हुई तो मुझे अपनी पूर्व धारणाओं को बदलना ही नहीं पड़ा बल्कि मुझे अपने पिछले विचारों पर ग्लानि भी हुई। और आज मैं सोचता हूँ कि यदि बलवन्त सिंह जैसे सच्चे, सरल, सहृदय मित्र की क़ीमती दोस्ती से मैं

महरूम भी रह गया होता और मैंने उनकी कहानियाँ ही पढ़ी होतीं तो भी मुझे सिक्खों के प्रति अपने विचारों पर ऐसी ही शर्म महसूस होती।

वैसे राजेन्द्रसिंह बेदी, कर्तारसिंह दुग्गल, संत सिंह सुक्खूँ आदि अनेक सिक्ख कहानी लेखक हैं किन्तु बलवन्तसिंह ने सिक्ख जीवन पर कहानियाँ लिखकर इन सब में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है।

बलवन्तसिंह को कहानी कला पर पूरा अधिकार है। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम सामाजिक जीवन पर भी बड़ी सफल कहानियाँ लिखी हैं। पर पंजाब के ग्रामीण जीवन और विशेष कर सिक्ख जीवन का चित्रण करने में बलवन्तसिंह को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। वे अपनी कहानियों में सिक्ख धर्म या सिक्ख संस्कृति का प्रचार नहीं करते बल्कि एक फोटोग्राफर की भाँति वे सिक्ख जीवन के विभिन्न चित्र हमारे सन्मुख रख देते हैं। वे अपनी ओर से कुछ नहीं कहते पर पाठकों के हृदय पर जो प्रभाव छोड़ जाते हैं वह अमिट होता है।

'पंजाब का अलबेला' कहानी बलवन्त सिंह की कला का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। इस कहानी में जस्सा सिंह डाकू के चरित्र का बलवन्त सिंह ने बड़ा ही सजीव चित्रण किया है और पंजाब के ग्रामों की बड़ी ही सुन्दर तस्वीर खींची है। इस कहानी में बलवन्त सिंह की कला अपनी चरम सीमा पर पहुँची दिखाई पड़ती है।

शफ़ीक़ुर्रहमान ने कालेज-जीवन से लिखना आरम्भ किया और आज पाकिस्तान मेडीकल सर्विस में मेजर के पद पर रह कर भी वे उसी गति और उसी शान से लिखते चले जा रहे हैं। हास्य और रोमान्स शफ़ीक़ुर्रहमान के प्रिय विषय हैं।

शफ़ीकुर्रहमान की कहानियों के पात्र उच्च वर्ग के ख़ुशहाल लोग होते हैं जिनके जीवन में चिन्तायें नहीं होतीं आनन्द ही आनन्द होता है। जो हज़ारों रुपये मासिक वेतन पाते हैं और सैकड़ों रुपये अपने नौजवान बेटों को कालेजों में उड़ाने के लिये देते हैं। जिनके पास बैठने के लिये सोफ़े हैं और लेटने के लिये क़ीमती मसहरियाँ। जो मोटरों में सैर करते हैं और फ़र्स्ट क्लास में सफ़र करते हैं। जो शाम को क्लबों में ताश खेलते हैं और रात को बाल-रूम में डान्स करते हैं। जिनके जीवन में सरासर कृत्रिमता होती है, जिनके चेहरे पाउडर और स्नो के इस्तेमाल से चमकते हैं और जिनके वास्तविक जीवन पर बनावट का खोल चढ़ा रहता है।

पर शफ़ीकुर्रहमान जब उस समाज का चित्रण करते हैं तो उसमें कृत्रिमता नहीं होती। वे उस समाज के वास्तविक चित्र खींचते हैं और कभी-कभी उस समाज पर गहरे कटाक्ष भी कर जाते हैं। शफ़ीकुर्रहमान ने हँसते चेहरों के पीछे छिपी वेदना भी देखी है और कभी-कभी उन नासूरों को कुरेद कर भी दिखाया है जो सर्व सम्पन्न जीवन बिताने वाले अमूल्य वस्त्रों के नीचे छिपाये रहते हैं।

उनकी कहानी 'भूत' में रोमान्स और हास्य दोनों का सम्मिश्रण है। इस में रोमान्स पर हास्य छा गया है।

सआदत हसन मण्टो उर्दू के प्रथम श्रेणी के कहानी लेखक हैं। उनकी कहानी 'टेढ़ी लकीर' उनकी कला का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है और उसके नायक के व्यक्तित्व में मण्टो का अपना व्यक्तित्व बहुत कुछ झलकता है। मण्टो को भी सीधा रास्ता और सीधी सादी बातें बहुत पसन्द नहीं हैं। वे हमेशा अपना रास्ता दूसरों से अलग बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं—ऐसा रास्ता जिस पर चलते देख दूसरे चौंकें, जबरदस्ती लोगों की निगाहें उस ओर उठें और मण्टो दूसरों से भिन्न दिखाई

पड़ें। यही कारण है कि जब कहानियों में अश्लीलता के विरुद्ध आवाज उठी तो मण्टो ने लगातार ऐसी कहानियाँ लिखनी शुरू कर दी जिनको अश्लील कहा जा सके और जब मण्टो ने देखा कि उस रास्ते पर भी उनके साथ बहुत से दूसरे लोग हो गये हैं तो उन्होंने फिर अपना रास्ता बदल दिया।

पर अकेले चलने वाले कभी कभी रास्ता भूल भी जाते हैं और दूसरे को चौंकाने वाली हरकतें करने वाले कभी कभी खुद तमाशा बन जाते हैं। और यही हाल आजकल उर्दू के इस महान लेखक का है जो प्रगतिवाद की साफ़ स्वच्छ और खुली सड़क को छोड़ कर प्रतिक्रियावाद की संकीर्ण, दुर्गन्ध और अँधेरी गली में भटक रहा है।

मण्टो पर तीन बार अश्लील कहानियाँ लिखने के अपराध में सरकर ने मुक़दमा चलाया। 'काली शलवार' और 'बू' कहानियाँ लिखने पर जो मुक़दमे चले उनके खिलाफ़ उर्दू के समस्त प्रगतिशील लेखकों और पत्र पत्रिकाओं ने आवाज़ उठाई और मण्टो सम्मान के साथ बरी हो गये किन्तु तीसरी बार 'ठण्डा गोश्त' कहानी लिखने के अपराध में उन पर जो मुक़दमा चला उसमें उन्हें तीन मास का कठिन कारावास मिला और इस बार मण्टो से न किसी ने सहानुभूति प्रकट की न किसी ने उनकी सहायता या रक्षा के लिये क़दम उठाया।

यद्यपि आज मण्टो जिस रास्ते पर जा रहे हैं वह बहुत ही खतरनाक है पर यह कहना उनके प्रति अन्याय होगा कि वे इसी रास्ते से मंज़िल तक पहुँचने में विश्वास करते होंगे। सम्भव है कुछ देर लगे और सम्भव है कि बहुत जल्द मण्टो साम्प्रदायिकता और प्रतिक्रिया के ग़लत मार्ग को छोड़ कर फिर उसी रास्ते पर आ जायँ जो मानव प्रेम का रास्ता है, जो विश्व शान्ति

का रास्ता है और जिसकी मंज़िल उस समाजवाद की स्थापना है जिसमें न जाति का भेद हो, न धर्म का और न ऊँचे नीचे वर्ग का ।

इस तरह यह है इन संग्रहीत कहानियों की छोटी सी कहानी और उनके लेखकों का धुंधला सा खाका । सम्पादक को न इस 'कहानी' से पूरा सन्तोष है न इस खाका से । मगर स्थान की कमी और तूल से बचने की इच्छा ने उसे मजबूर कर दिया है कि अब वह और कुछ न कहे । आधुनिक उर्दू साहित्य की ये छः प्रतिनिधि कहानियाँ छः प्रतिनिधि लेखकों की सुन्दर रचनायें हैं जिनको हिन्दी पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हुए सम्पादक को गौरव का अनुभव हो रहा है । उसी तरह अगर हिन्दी के कहानी लेखकों की सुन्दर रचनाओं को शीघ्र ही वह उर्दू पाठकों की सेवा में रख सका तो अपने को कृतकृत्य समझेगा ।

हिन्दी-उर्दू कहानीकारों की रचनाओं को उर्दू-हिन्दी के पाठकों के सामने रखने के इस प्रयास को आप स्तुत्य नहीं तो आवश्यक अवश्य समझेंगे ।

१६, कटरा,
इलाहाबाद ।
९ नवम्बर, '५०

—महमूद अहमद 'हुनर'

ख़्वाजा अहमद अब्बास

एक बच्चे का ख़त महात्मा गाँधी के नाम

बमुकाम जन्नत या स्वर्ग पहुँच कर अल्लाह मियाँ या भगवान की मारफ़त जनाब महात्मा गाँधी साहब को मिले।

बापू!

मेरी अम्माँ कहती हैं कि आप जन्नत को सिधारे हैं अल्लाह मियाँ के पास और गोपाल की माता जी कहती हैं कि आप स्वर्ग में भगवान को प्यारे हो गये हैं। न जाने किसका कहना सच है इसीलिये मैं इस पते पर आप को यह ख़त डाल रहा हूँ। और शायद स्वर्ग और जन्नत एक ही जगह का नाम हो जैसे बनारस को काशी भी कहते हैं और इलाहाबाद को प्रयाग। उम्मीद है आप जिस जगह भी होंगे यह ख़त आप को मिल जायगा।

यह खत असल में मैं खुद नहीं लिख रहा हूँ बल्कि मुझसे लिखवाया जा रहा है।

लिखवाने वाले यह हैं—मेरा छोटा भाई बुन्दू (जिसका असल नाम बन्दे अली है) और मुझसे बड़ी बहन ज़ैनब और छोटी सकीना। गोपाल, गोपाल की छोटी बहन सीता और हाँ, मोहन उसको तो भूल ही गया था मैं। बात यह है कि वह चाहता तो है कि मैं आप को खत लिखूं पर यह बात उसने मुँह से नहीं कही है आँखों से कही है। वह मुंह से कुछ नहीं कहता जो कहना होता है आँखों से ही कहता है। उसकी आँखें बहुत कुछ कहती हैं, पर उसका ज़िक्र मैं बाद में करूँगा। इस वक्त तो यह कहना है कि मोहन की आँखें भी मुझसे कह रही हैं, बापू को खत लिखो। सो मैं लिख रहा हूँ। मेहरबानी करके मुझे माफ़ कर देना। कर दोगे न बापू!

आप तो बड़े आदमी हैं। सोचते होंगे यह बच्चे मुझे क्यों खत लिखवा रहे हैं। पर हमने सुना है आप को बच्चे बहुत भाते थे। मैंने एक तसवीर में देखा है। आप छोटे-छोटे बच्चों के साथ बैठे खेल और हँस रहे हैं। गोपाल कहता है उसने एक दफ़ा आपको जोहू में समुन्दर के किनारे बच्चों के साथ खेलते देखा था। और मोहन जब आपकी तसवीर को देखता है तो उसकी आखें, जो वैसे हमेशा दुख और डर से भरी रहती हैं, खुशी से चमकने लगती हैं और कहती हैं यह सब बच्चों के बापू हैं, इनसे क्या डरना और बुरा न मानें तो मैं कहूँ आप हँसती हुई तसवीर में बिलकुल बच्चे लगते हैं। इतने छोटे बच्चे जिसके अभी दाँत भी न निकले हों। जैसा गोपाल का सबसे छोटा भाई, जो साल भर का है और आपकी तरह बकरी का दूध ही पीता है। सो हमने सोचा आप को हम यह खत लिखें तो आप बुरा न मानेंगे, इस वास्ते यह खत लिख रहे हैं।

मेरा नाम अनवर है। सब मुझे अन्नू अन्नू कहते हैं। हमारा

असली घर पानीपत जिला करनाल सूबा पंजाब में है। मेरे अब्बा, जिनका नाम अकबर अली है, दिल्ली में सरकारी दफ्तर में नौकर थे। मेरी उमर साढ़े छै बरस की है। मेरी अम्माँ का नाम तो फ़ातमा है पर सब उनको फ़त्तो फ़त्तो कहते हैं और एक हमारी नानी अम्माँ हैं, जो आपकी तरह बुड्ढी हैं और मुंह में दाँत भी नहीं है। सो पान को पन-कुट्टी में कूट कर खाती हैं। यह सब हमारा खानदान पानीपत में रहता था, सिवाय अब्बा के जो नौकरी पर नई-दिल्ली में रहते थे, एक क्वार्टर में बाबर रोड के पास।

मेरे अब्बा आपको अच्छा न समझते थे। हमेशा कहते थे गाँधी तो मुसलमानों का दुशमन है। अम्माँ भी यही कहती थीं। सो मैं भी आपको अच्छा न मानता था। पर नानी अम्माँ कहती थीं गाँधी अल्लाह वाला आदमी है। वह सबको भाई-भाई समझता है। उन्होंने आपको बहुत दिन हुये देखा था जब आप पानीपत खिलाफ़त कमेटी के किसी काम से आये थे और औरतों के जलसे में भी तक़रीर की थी। जब से वह खद्दर और गाढ़ा ही पहनती हैं और आपको अच्छा मानती हैं। पर अब्बा कहते थे वह तो बुड्ढी बेवक़ूफ़ है, बड़ी-बड़ी बातों को क्या जानें। अब्बा तो अलीगढ़ कालेज के पढ़े हुये हैं और अखबार रोज़ पढ़ते हैं। इस वास्ते हम उनकी बात ही मानते थे और जब आपका ज़िक्र आता था, आपको बुरा कहते थे। मज़ाक उड़ाते थे। क्योंकि आपकी लंगोटी और नंगा बदन देखकर हँसी आती थी।

फिर हमने सुना कि हिन्दुस्तान का बटवारा होने वाला है। जैसे दादा अब्बा के मरने पर उनकी जायदाद का हुआ था, जिसमें आधी अब्बा को और आधी ताया अब्बा को मिली थी। हम गलियों में "पाकिस्तान ज़िन्दाबाद" के ख़ूब नारे लगाते फिरते थे। मैंने एक दिन अब्बा से पूछा, पाकिस्तान क्या है? उन्होंने कहा यह मुसलमानों का अपना अलग मुल्क होगा, जहाँ हम राज करेंगे। इससे हम बहुत ख़ुश हुये

क्योंकि मैंने अब्बा के एक रंगीन तसवीरों वाले अखबार में एक राजा की तसवीर देखी थी। वह सोने का ताज पहिने और गले में मोतियों का हार डाले था। सो मैंने सोचा हम सब मुसलमान अब राजा बन जायेंगे और हमारे सिरों पर सोने के ताज और गले में मोतियों के हार होंगे।

पानीपत में मुसलमान ज्यादा रहते हैं और हिन्दू थोड़े से हैं। सो हम हिन्दुओं के सामने अकड़ कर चलते थे और बनियों के लड़कों के सामने ज़ोर ज़ोर से 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते और अगर वह कांग्रेस या आपका यानी गाँधी का नाम लेते तो उनको मारते भी थे। पर जब पाकिस्तान बन गया तो हमने सुना पानीपत पाकिस्तान में नहीं आया, सो यहाँ मुसलमान राजा न बनेंगे। फिर सुना कि सारे मुल्क में मारा मारी होने लगी। अब्बा जब दिल्ली से पानीपत आते तो वह कहते, हिन्दू मुसलमानों को मार रहे हैं। सो मैं हिन्दुओं से और भी नफ़रत करने लगा। पर एक बात मेरी समझ में यह नहीं आई कि पाकिस्तान में और जहाँ भी मुसलमान बहुत ज्यादा थे और हिन्दू कम वहाँ मुसलमानों को हिन्दू कैसे मार सकते हैं। फिर हम मुसलमान तो बादशाहों की औलाद हैं और मारने धाड़ने में आगे आगे रहते हैं। पंजाब और सूबा सरहद में जहाँ मुसलमान ही मुसलमान रहते हैं, हम हिन्दुओं को खूब मार सकते थे और शायद मारा भी होगा। पर मैं बच्चा ठहरा। शायद मैंने समझने में ग़लती की हो और अब्बा पढ़े लिखे ठहरे इस वास्ते मैं चुप ही रहा। पर यह बात दिल में खटकती रही।

फिर दिल्ली में मारा मारी शुरू हो गई और पानीपत के मुसलमान पाकिस्तान भागने की तैयारी करने लगे। पर मेरे अब्बा जाने को तैयार नहीं थे। बात यह है कि मेरे अब्बा ज़रा कन्जूस हैं और अपनी जायदाद, घर बार और खेतों को छोड़ कर न जाना चाहते थे। उन्होंने कहा आहिस्ता आहिस्ता सब चीज़ों को अच्छे दामों बेच कर जायेंगे। पर इतने

में पानीपत में पंजाब के भागे हुए बहुत से हिन्दू और सिक्ख आ गये। हज़ारों, लाखों। जिन सबको रहने के लिये मकान चाहिये था। इन सब के घर पच्छिमी पंजाब के मुसलमानों ने लूट लिये थे और इनके बाल बच्चों को मारा भी था, और अब यह सब मुसलमानों से नफ़रत करते थे। सो पानीपत में मुसलमानों का रहना मुश्किल हो गया। कुछ पुलिस के हाथ मारे भी गये। रोज़ इन्तज़ार करते कि पाकिस्तान से मोटरें लारियाँ आयेंगी पर वह न आईं। फिर जब ख़तरा बढ़ गया तो अम्माँ ने अब्बा को दिल्ली में लिखा और वह वहाँ से फ़ौजी लारी लेकर आये और हम थोड़ा थोड़ा सामान साथ लेकर उस लारी में दिल्ली आ गये।

अब मैं आप को अपनी बन्दूक के बारे में बताना चाहता हूँ। यह बन्दूक बड़ी ख़ूबसूरत है। चमकती हुई नाली, लकड़ी का कुन्दा और चलाओ तो खटाक से आवाज़ आती है। यह मेरी पाँचवीं साल गिरह पर अब्बा ने लाकर दी थी और कहा था—अभी से बन्दूक़ का शौक़ करो तो बड़े होकर सूरमा सिपाही बनोगे और काफ़िरों के ख़िलाफ़ जिहाद करोगे। असल में तो यह खेलने ही की बन्दूक है मगर इसे कंधे पर रख कर मैं सारी गली के लड़कों को परेड करवाता था। यह हमारी पाकिस्तानी फ़ौज थी।

हाँ, तो जब हम पानीपत से चले तो घर का सारा सामान छोड़ना पड़ा। अब्बा की किताबें, अम्माँ के बरतन, कपड़े, सन्दूक़, लिहाफ़, रजाइयाँ, सब रह गया। बस दो चार पहिनने के कपड़े साथ ले सके। पर मैंने यह बन्दूक़ चुपके से साथ ले ली। क्योंकि इसी से तो मैं काफ़िरों से बदला लेने वाला था जिन्होंने हमें पानीपत से निकाला था।

दिल्ली में हम दस बारह दिन एक कमरे में बन्द रहे क्योंकि वहाँ मुसलमानों को मारा जा रहा था और हमारे सब के मुंह पीले पड़ गये। फिर हमने सुना कि आप कलकत्ते से आये हैं और मुसलमानों को बचाने की कोशिश कर रहे हैं। पहले तो अब्बा कहते रहे कि यह भी गाँधी की

कोई चाल होगी मगर बाद में मान गये कि आप सचमुच मुसलमानों की जान बचा रहे हैं। दिल्ली में थोड़ा अमन हो गया पर रास्ते में भरतपुर की रियासत में सुना रेल में मुसलमानों को मार रहे थे इस वास्ते जब अब्बा की बदली बम्बई की हो गई तो हम हवाई जहाज से यहाँ आ गये।

मैंने सुना है आप हवाई जहाज में कभी नहीं बैठे। वाह बापू! मालूम होता है आप डरते हैं। मैं तो बिलकुल ही नहीं डरा। सारे रास्ते खिड़की के पास बैठा रहा यहाँ तक कि नानी अम्माँ भी नहीं डरीं और चलते हवाई जहाज में बैठी पनकुट्टी में पान कूटती रहीं। यह भी आप की तरह बिलकुल पोपली हैं न। पर यह तो पहले ही लिख चुका हूँ।

बम्बई में हमें रहने को दो कमरे मिल गये। शिवा जी पार्क के इलाके में, जहाँ चारों तरफ हिन्दू ही हिन्दू रहते हैं। हम सब पहले तो बहुत डरे कि कोई मार न दे। पर नानी जान ज़रा भी नहीं डरीं। वह तो बुरका ओढ़े समुन्दर के किनारे-किनारे दूर तक हो आती थी और कहतीं हिन्दू सिक्ख भी तो अल्लाह के बन्दे हैं, मुझ बुड्ढी को कौन मारने लगा। समुन्दर हमारे घर के पास ही है। मैंने समुन्दर का ज़िक्र स्कूल में पढ़ा था मगर देखा नहीं था। वह तो बहुत बड़ा निकला। पानीपत की नहर और दिल्ली में दरिया जमुना और दस जूहड़ों और दस तालाबों को मिला कर इनसे भी बड़ा। बस पानी ही पानी है। नानी अम्माँ कहने लगी पानीपत तो यों ही कहलाता है असल पानीपत तो यह है।

हमारे बराबर के घर में हिन्दू रहते थे। गोपाल के माँ बाप। गोपाल के चाचा बहुत कट्टर हिन्दू हैं और संघ वालों के साथ परेड भी करते थे। उन्होंने अपने घर के बच्चों को पढ़ा रक्खा था कि मुसलमान बहुत बुरे होते हैं। इनको मारना चाहिये। सो गोपाल ने अपने घर में हिन्दू सेना बना रक्खी थी और लकड़ी की तलवारें, एक टीन का

पिस्तौल और बाँस के तीर कमान लेकर रोज़ परेड करते थे। और नारे लगाते—हिन्दू राज बनावेंगे। मुसलमान को मार भगावेंगे। और—हर हर महादेव। और दूसरे नारे जो शायद मराठी ज़बान में थे। उनके मुक़ाबले में मैंने अपनी पाकिस्तानी फ़ौज बना ली। गोपाल की फौज में दस बारह बच्चे थे और हम चार ही थे। पर हम डरते नहीं थे। एक तो जैसे अब्बा कहते थे कि एक मुसलमान चार पाँच हिन्दुओं के बराबर होता है और दूसरे मेरे पास बन्दूक़ थी और उनके पास बस लकड़ी की तलवारें और तीर कमान, सो हम ख़ूब मुक़ाबला करते। जब वह नारा लगाते—हर हर महादेव, तो हम चिल्लाते—अल्ला हो अकबर, जब वह कहते—हिन्दू राज बनावेंगे, तो हम कहते—हँस के लिया था पाकिस्तान, लड़ के लेंगे हिन्दुस्तान। अब्बा मना भी करते कि चारों तरफ हिन्दू रहते हैं ऐसी बातें न करो और नानी अम्माँ ने भी डाँटा पर हम मानने वाले थोड़े ही थे। एक दिन नारे लगाते-लगाते गोपाल और उसकी फौज ने हमारे घर पर हमला कर दिया। बुन्दू को चोट भी लगी। पर मैंने अपनी बन्दूक़ से डरा कर मार भगाया।

जब हिन्दू सेना और पाकिस्तानी फ़ौज में घमासान की लड़ाई हो रही थी, मैंने मोहन को पहली दफ़ा देखा। वह हमारी लड़ाई को ऐसी फटी-फटी आँखों से देख रहा था जैसे उसने ऐसी लड़ाई पहले भी कहीं देखी हो। वह चिल्लाया नहीं। मगर उसकी आँखों से आँसू टप-टप गिर रहे थे। गोपाल की फ़ौज को भगाकर मैंने मोहन से पूछा, जो एक कमीज़ शलवार पहने घरों के बीच की दीवार पर बैठा चुपके-चुपके रो रहा था—क्यों भाई तू कौन है, हिन्दू या मुसलमान? क्योंकि शलवार से मैं समझा था शायद मुसलमान होगा। पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। बस फटी-फटी आँखों से देखता रहा। उसकी आँखों को देखने से डर सा लगता था। जैसे क़लन्दर* साहब की दरगाह में बावले फ़क़ीर बैठे रहते हैं। मैंने सोचा यह भी बावला बच्चा होगा या शायद गूँगा हो।

पर इतने में गोपाल आ गया और कहने लगा—इस बेचारे को क्यों मारते हो। यह तो पंजाब से आया है। इसके माँ बाप वहां मारे गये हैं और यह यहां अपने रिश्तेदारों के यहाँ रहता है। यह सुन कर मुझे बड़ा तरस आया और बन्दूक़ के खेल में जी न लगा और रात को ख़्वाब में मोहन की डरावनी फटी-फटी आँखें नजर आती रहीं और मैं डर के मारे नींद में रोने लगा।

उस दिन से मोहन अक्सर दीवार पर बैठ जाता और हमारा खेल फटी-फटी आँखों से देखता रहता। वह ख़ुद न हमारे साथ खेलता न गोपाल के साथ बस अलग चुपचाप बैठा रहता और न जाने क्या सोचता और न जाने उसकी आँखें क्या कहतीं, न जाने उन आँखों ने क्या देखा था जिससे उसको चुप लग गई थी।

और फिर हमने रेडियो पर सुना कि आपने भूख हड़ताल कर रक्खी है और जब तक दिल्ली के हिन्दू मुसलमानों को मारना बन्द न करेंगे आप खाना न खायेंगे। यह सुन कर नानी अम्माँ की आँखों में आँसू आ गये और उन्होंने दो वक़्त का खाना न खाया। और अब्बा भी कहने लगे कि हिन्दुओं में अच्छा आदमी है तो गाँधी ही है। मैंने नानी अम्माँ की रेस में एक दिन दूध न पिया और न दोपहर का खाना खाया। पर शाम होते होते बुरा हाल हो गया। न खेल में जी लगा न पढ़ाई में। बस आँखों के सामने शामी कबाब, पुलाव और शीरिनी की रकाबियाँ नजर आती रहीं और मैं सोचता रहा कि आप कैसे बिना खाये पिये रहते हैं।

जब आपके फ़ाक़े को कई दिन होगये और हमने सुना कि सारे मुल्क में सब हिन्दू मुसलमान कान पकड़ रहे हैं कि हम अब न लड़ेंगे। तो हमने भी हिन्दू सेना और पाकिस्तानी फ़ौज का खेल बन्द कर दिया और एक दिन सवेरे जब मैंने मोहन को दीवार पर चुपचाप बैठे देखा और उसके पास गया तो दूसरी तरफ़ से गोपाल भी आगया।

गोपाल कहने लगा---अन्नू!

मैंने कहा—हाँ गोपाल, क्या बात है!

वह बोला—बापू जी।

और बस इतना कह कर रोने लगा।

उस दिन अखबार में छपा था कि आपकी तबियत बड़ी कमज़ोर होगई है और बोलना भी मुश्किल होगया है। यह सोचकर मैं भी रो पड़ा।

गोपाल ने मेरी तरफ़ ताज्जुब से देखा और बोला—तुम भी रो रहे हो!

मैंने कहा—हाँ, वह मुसलमानों के लिये ही तो यह सब कर रहे हैं।

गोपाल ने कहा—आज से हिन्दू मुसलमान की लड़ाई का खेल बन्द......।

मैंने कहा—हाँ, बिलकुल बन्द कर देंगे। जब सब कान पकड़ रहे हैं तो हम भी कान पकड़ते हैं।

फिर हम दोनों ने फ़ैसला किया कि बन्दूक पिस्तौल तलवारें सब तोड़कर समुन्दर में फेंक देंगे।

न जाने क्यों मेरी नज़र मोहन की तरफ़ गई और इतने दिनों में पहली दफ़ा मैंने उसकी आँखों में थोड़ी सी खुशी देखी और मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने जादू कर दिया हो।

अब्बा भी अगले दिन कहने लगे—दिल्ली में जादू हो गया। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान लीडरों ने गाँधी जी के सामने कान पकड़ लिये कि अब कभी न लड़ेंगे। मुसलमानों की मसजिदें उन्हें वापस मिल गईं और दिल्ली के बाज़ारों में मुसलमान फिर मज़े से चलने फिरने लगे, और आपने फ़ाक़ा तोड़ दिया और ख़्वाजा कुतुबुद्दीन के मज़ार पर भी उर्स में गये।

हाँ, तो एक दिन पहले तो हमारा इरादा था कि मैं अपनी बन्दूक और गोपाल अपने तीर कमान तोड़ डालेंगे, पर जब मैंने चमकती हुई बन्दूक को देखा तो मेरा जी न चाहा उसे तोड़ने को मैंने सोचा क्या मालूम गोपाल ने अपना पिस्तौल और तीर कमान न तोड़े हों। मैं भी बन्दूक क्यों न रख लूँ। फिर मैं कोई चला थोड़े ही रहा था। बस रक्खी हुई थी ज़रूरत के वास्ते।

उधर गोपाल ने भी यही सोचा कि अन्नू शायद अपनी बन्दूक़ न तोड़े। मैं अपना पिस्तौल और तीर कमान क्यों खो दूँ।

आपका फ़ाक़ा ख़त्म हो गया और हमने इतमीनान का साँस लिया। न जाने क्यों, मगर आपकी बीमारी और कमज़ोरी की ख़बर से दिल घबराता था। जैसे अब्बा या अम्माँ की तबियत ख़राब हो। मेरा और गोपाल का ही नहीं सारे मुहल्ले वालों का। जब ही तो सब आपको बापू बापू कहते हैं।

फिर हम यह सुनकर धक से रह गये कि आप पर बम फेंका गया। ख़ुदा का शुक्र है कि आप बाल बाल बच गये और बम फेंकने वाला पकड़ा गया।

मैंने गोपाल से कहा—गोपाल, यह तो बहुत बुरा है। बुरे लोग गाँधी जी को मारना चाहते हैं।

गोपाल बोला—हमें गाँधी जी की हिफ़ाज़त करनी चाहिये।

मैंने कहा—कैसे?

वह बोला—हम दिल्ली जाकर गाँधी जी के घर पर पहरा देंगे।

मैंने कहा—तुम कैसे पहरा दोगे। न बन्दूक़ न तलवार......

वह जल्दी से बोला—पिस्तौल और तीर कमान जो हैं।

फिर वह चुप हो गया। जैसे भूल से कह गया हो। मैं भी बे सोचे

बोल पड़ा—पिस्तौल की मार तो दो चार गज़ ही होती है। मैं बन्दूक़ ले के पहरा दूँगा।

वह मुझे घूर के देखकर कहने लगा—तुम्हारे पास बन्दूक़ कहाँ से आई?

मैंने भी वैसे ही जवाब दिया—जहाँ से तुम्हारे पास पिस्तौल और तीर कमान आये।

वह बिगड़ गया। कहने लगा—तुम मुसलमानों का कोई एतबार नहीं। वादा किया था, बन्दूक तोड़ दूँगा।

मैं भी चुप बैठने वाला नहीं था, बिगड़ कर बोला—और तुम हिन्दू काफ़िरों का क्या एतबार, तुमने नहीं कहा था पिस्तौल और तीर कमान तोड़ दूँगा।

वह बोला—जाओ हम नहीं खेलते तुम्हारे साथ।

मैंने कहा—हम कौन से मरे जा रहे हैं। और यह कहकर मैं चला आया और घर आ के अपनी बन्दूक को साफ़ किया, उसके कल पुर्जों में तेल डाला। न जाने कब हिन्दू सेना से मुक़ाबला हो जाय।

उधर गोपाल और उसका भाई बाँस के तीरों को छील कर तेज़ करते रहे।

और अबकी जब मैंने मोहन को दीवार पर चुप बैठे देखा तो उसकी आँखों में वही दुख और दर्द देखा जो पहले था।

कई दिन गुज़र गये।

शाम को हम समुन्दर के किनारे लगे हुये मेले को देख रहे थे कि अब्बा दफ्तर से भागे हुये आये। कहने लगे—गाँधी जी का इन्तकाल हो गया। किसी पागल ने उनको गोली मार दी।

पहले तो किसी को यक़ीन नहीं आया। भला गाँधी जी कैसे मर सकते हैं। हमने सोचा, वह तो बम से भी नहीं मरे। फिर ख़याल आया

और सोचा कि उनकी हिफ़ाज़त नहीं की ठीक से किसी ने। पिस्तौल चलाने वाला वहाँ तक पहुंचा कैसे ?

रात को किसी ने खाना नहीं खाया। बस रेडियो के पास बैठे खबरें सुनते रहे, पंडित जवाहर लाल नेहरू की तक़रीर सुनी, इतने बड़े आदमी हो कर भी वह रो रहे थे। बस बोलते जाते थे और रोते जाते थे। यह सुन कर मुझे भी रोना आ गया और बड़ी देर तक रोता रहा। नानी अम्माँ और अम्माँ तो पहले ही रो रही थीं, अब्बा की आँखों में भी आँसू थे।

उस रात को मुझे ठीक से नींद न आई। डरावने ख़्वाब दिखाई देते रहे। कभी देखा आपको कोई मारने आ रहा है और मैं चिल्ला रहा हूँ—गाँधी जी को बचाओ, गाँधी जी की जान खतरे में है। पर कोई नहीं सुनता। पर सबसे डरावना ख़्वाब यह देखा कि एक आदमी आपकी तरफ़ गोली चला रहा है और उसके हाथ में मेरी बन्दूक़ है और उसकी गोली आपको लग रही है। और मुझे लगा कि आप इसी वास्ते मुझसे खफ़ा होकर चले गये हैं।

अगले दिन हड़ताल थी। स्कूल बन्द था। पर खेलने को जी न करता था। अहाते की दीवार के पास गया तो देखा, मोहन बैठा रो रहा है। ज़ोर-ज़ोर से चीख़ें मार कर, उसे देखकर मुझे और भी रोना आ गया। फिर गोपाल आया, वह भी रो रहा था।

गोपाल बोला—बापू जी चल बसे।

मैंने कहा—हाँ, नानी अम्माँ कहती हैं अल्लाह को प्यारे हो गये।

फिर गोपाल बोला—अन्नू, मैंने सपने में देखा......

मेरा दिल धक से हो गया। ज़ल्दी से बोला—तुमने ख़्वाब देखा कि मेरी बन्दूक से......

गोपाल ने बात काटी—नहीं, देखा० मेरे पिस्तौल से बापू को कोई मार रहा है।

मैंने उसे अपने ख़्वाब की बात बताई।

गोपाल ने कहा—बापू हम दोनों से ख़फ़ा होकर चले गये हैं।

फिर हम दोनों मिल कर रो दिये। मोहन फिर ज़ोर ज़ोर से रोने लगा और हम यह देख कर हैरान रह गये कि इस रोने से उसकी आवाज़ खुल गई थी। अब वह बोल सकता था।

× × ×

तेरह फरवरी।

कल कितने ही दरियाओं समुन्दरों में आपकी चिता की राख को डाला गया। चौपाटी पर हमने भी अपनी आँखों से देखा। कई लाख का जलूस था। उसमें बहुत से मुसलमान भी थे। आपको मरे हुये तेरह दिन होगये हैं। इन दिनों में हमारी सरकार ने बहुत से बुरे आदमियों को पकड़ा है जो हिन्दू मुसलमानों को लड़वाते थे, और आपको मारना चाहते थे, और हिन्दुस्तान पाकिस्तान दोनों में हिन्दू मुसलमान तौबा कर रहे हैं और कान पकड़ रहे हैं कि अब मार धाड़ न करेंगे। अब आप इनको माफ़ कर दीजिये और वापस लौट आइये।

हाँ, आज शाम को जब सब लोग समुन्दर के किनारे से चले गये तो मैं चुपके से अपनी बन्दूक तोड़ कर पानी में फेंक आया हूँ। जहाँ मैंने अपनी बन्दूक के टुकड़े फेंके वहीं मैंने देखा कि गोपाल का टूटा हुआ पिस्तौल और टूटे हुये तीर कमान भी पानी में पड़े हैं।

और अब मैं और गोपाल और बुन्दू और ज़ैनब और सकीना और सीता सब तौबा करते हैं और कान पकड़ते हैं कि फिर आपस में न लड़ेंगे। अब हमें माफ़ कर दीजिये और लौट आइये।

आप लौट आयेंगे न बापू?

———

अहमद नदीम कासिमी

हीरोशीमा से पहले — — —
— — — हीरोशीमा के बाद

लोग कहते थे, शमशेर खा वक्त से पहले बूढ़ा हो गया है। उसकी रंगीन तबीयत के कारण लोग आशा करते थे कि उसके चेहरे की चमक ज्यों की त्यों बनी रहेगी और उसकी दाढ़ी के बाल काले ही रहेंगे। लेकिन कुछ दिनों से उस पर बुढ़ापा बर्फ़ की तरह गिरना शुरू हुआ और उसके सिर के बालों और दाढ़ी-मूछों को खिचड़ी बना गया। बुढ़ापे की इस रहस्यमयी सफ़ेदी ने उसके लिबास पर भी प्रभाव डाला। बनारसी पगड़ियां, रेशमी लुंगियां और बोस्की के खुले और ढीले-ढाले कुर्तों की जगह मलमल की छीटों, टख़नों से बालिश्त भर ऊँचे तहमदों और खद्दर की कसी-कसाई बंगाली क़मीसों ने ले ली। चेहरे की लाली निचुड़ गई, और आँखों के किनारों पर मकड़ियों ने

टाँगें पसार दीं। इस परिवर्तन के होते हुये भी बच्चों से लेकर बूढ़ों तक और कुमारियों से लेकर विधवाओं तक उसकी छेड़छाड़ चलती रही, बल्कि कुछ अधिक ही हो गई। जब वह गली के नुक्कड़ पर तेज़ी से गुज़रते हुए किसी नवयुवक पर फब्ती कसता: "अरे भाई, वह तो पनघट पर जा चुकी", या चौपाल के परली ओर क़ब्रस्तान के एक सुनसान कोने में किसी बाँके नौजवान को दबकता देखकर पुकार उठता: "आज गाड़ी लेट मालूम होती है," तो लोग बेतहाशा हँसते और स्वयं शमशेर के ठहाके उन सबसे ऊँचे होते। किन्तु हर रोज़ कोई उसी की दुखती रग को छेड़ देता—"शमशेर चचा, जाने क्या बात है कि पहले तुम हँसते थे तो ऐसा लगता था मानो कटोरे बज रहे हों, और अब तुम हँसते हो तो ऐसा लगता है मानो चट्टानें लुढ़क रही हों पर्वत पर से। और फिर न तुम्हारी आँखें चमकती हैं और न चेहरा दमकता है। तुम हँसते हो तो तुम्हारे पपड़ियाये होंठों से खून रसने लगता है, तुम्हारे माथे की लकीरें गहरी हो जाती हैं, आखिर क्या विपता पड़ी हमारे चाचा पर कि दिनों में बुझ कर रह गया!"

पर्वत पर की चोटी पर से लुढ़कती हुई चट्टानों का ताँता बँध जाता और वह कहता—"यानी मतलब यह है तुम्हारा कि हम बूढ़े सिरे से हँसना ही छोड़ दें और यह नेमत भी तुम नौजवानों को सौंप दें। क्यों भई, हमने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा? हमने तुम्हें सौंप रक्खी हैं मुहब्बतें और रातों की मुलाकातें, और अकेले के गीतें, और लाल चेहरे, और लौ देती पुतलियाँ। अब यह हँसी भी छीन लो हमसे कि हम सचमुच के बेहया बनकर रह जायें। वाह!—और भई, यह एक कान से इत्र की फुरहरी निकाल कर हमें भी तो सुंघाओ। कहते हैं, जिसने हिना का इत्र नहीं सूँघा, उसे माँ ने अभी जना ही नहीं!" और चट्टानों का एक और रेला गड़गड़ाता हुआ उमड़ पड़ता।

लेकिन लोगों का अनुमान ग़लत न था। यद्यपि वह इसका कारण

नहीं जानते थे, उन्हें यह पता नहीं था कि अपने बेटे दिलेर खां की शादी पर उसने दिखावे की खातिर जो धूम मचाई थी, और सोने-चाँदी के जो ढेर लगा दिये थे, वह वास्तव में महाजन की भरपूर का परिणाम थे, और शहनाइयों और गीतों और मुबारकबादियों की कोलाहल के बाद जब उसने परिस्थितियों का अवलोकन किया था तो एक रात घबराकर पुकार उठा था—"दिलेर खाँ, दिया बुझा दो भई, तेल .ख्वाह मख्वाह जल रहा है।"

मिली हुई कोठरी के दरवाज़े की आलोकित झरियाँ अचानक मिट गई और उसने रज़ाई लपेट कर सोने की चेष्टा करना चाही। किन्तु करवटों के बहुत से चिह्न बनाने के बाद वह उठ बैठा। उसे अँधेरे से हौल आने लगा। ताक़ पर से दियासलाई की डिबिया उठाकर उसने चिराग़ जलाया तो मिली हुई कोठरी से आवाज़ आई—"क्या बात है अब्बा?" और वह झुंझला कर बोला—"अरे, अभी तक जाग रहे हो तुम लोग?" और उसने दिया बुझाकर फिर रज़ाई की शरण ली।

बार-बार उसके दिमाग़ को इस अनुभूति की असंख्य सुइयां कुरेदने लगतीं कि वह अपनी अच्छी खासी पूँजी को बरबाद करने के अलावा तीन हजार का क़रज़दार है, अब उसका बेटा नौजवान है, उसका विवाह भी हो चुका है, अब उसके बच्चे होने लगेंगे, खर्च बढ़ता जायगा और भूमि उजड़ती जायगी। पहले सिंधु के पानी से उसकी भूमि पर हर साल जीवन की नई तहें फैल जाती थीं। उन लोगों पर उसे बहुत तरस आता था, जिनकी भूमि नदी से दूर थी, जो सदैव वर्षा के मुहताज रहते थे, वर्षा के लिए मसजिदों में दुआयें मांगते थे, ग़रीबों में गुड़ और घुँघनियाँ बांटते थे, नमाज़ें पढ़ते थे और फिर निराश होकर गालियां देने लगते थे। किन्तु अब सिंधु से एक बहुत बड़ी नहर निकाली जा रही थी और नदी सिमट और हट कर बहुत दूर पर पर्वतों के चरणों में रेंग रहा था। चटखी हुई सारी भूमि पर जब वह भटर का इक्का-दुक्का पौधा

देखता और ढोर-डांगर इन दूर-दूर तक बिखरे हुये पौधों की खोज में मारे-मारे फिरते तो वह बहुत दुखी हो जाता। धरती दिन पर दिन बिगड़ती और उजड़ती जा रही थी और सिंधु का पानी इन विस्तृत थलों के सदियों के सूखे सड़े गर्भ में जा रहा था, जिन पर नवाबों और जागीरदारों का क़ब्ज़ा था और जो इन थलों की परवाह न करते हुये भी पहले अत्यन्त उपजाऊ भू-भागों और हरी-भरी रियासतों के मालिक थे।

"कुछ समझ में नहीं आता," उसने एक दिन ज़ैलदार से कहा था—"कुछ पता नहीं चलता कि एक हज़ार गरीब किसानों की ज़मीनों को उजाड़ कर सिर्फ़ एक ज़मींदार के आराम का सामान क्यों किया जा रहा है। भई, यह बात अजीब उलटी सी है। ख़ुदा की इन नेमतों में तो हर इन्सान बराबर का हिस्सेदार है। नदी के पानी पर भी कभी किसी का कब्ज़ा हुआ है भई ज़ैलदार।"

ज़ैलदार विरासत में पाई हुई वफ़ादारी जाहिर करने से कभी न चूकता। कहता—"शमशेर खाँ, सरकार जो चाहे करे! चाहे तो थलों में नदियाँ बहा दे, चाहे तो हरे-भरे खेतों में आग लगा दे। ऐसी बातें यों खुल कर न किया करो। सरकार को पता चला तो धर लिये जाओगे। और भई, ख़ुदा और सरकार पर कौन उँगली उठाये।"

"मगर नदी के पानी पर किसी का इजारा थोड़े ही है," वह हैरान होकर कहता।

"सरकार चाहे तो हवा पर लगान लगा दे," अपनी आदत के अनुसार ज़ैलदार सरकार की वकालत करता।

और फिर शमशेर खाँ की हँसोड़ प्रकृति मानो जाग उठती। उसका दिमाग़ सारी दुनिया का उपहास करने के लिये तैयार हो उठता—"हवा पर भी लगान? भई सचमुच अगर सरकार हवा पर भी लगान लगा दे तो अजीब तड़क-भड़क शुरू हो जाय। हरदम चीख़-पुकार मची रहे, 'अरे भई क्या हुआ? कैसा शोर है?'—'कुछ नहीं भई, इधर इस घर

में हवा खत्म हो गई है, सारे घर वाले तड़प रहे हैं। पाँच सौ के नोट देकर मीरासी को शहर भेजा है कि सरकार से हवा के कनस्टर खरीद लाये—ही ही-ही ! और फिर ज़ैलदार ! एक बात कहूँ, यह सामने दादा शहबाज़ बैठा है न, हवा पर लगान लगे तो सबसे पहले यही दम तोड़ेगा, बेचारा !"

"क्यों ?" कोई सवाल करता।

"एक तो ग़रीब है, सुबह बघारी हुई दाल दूसरे दिन तक चलती है। और फिर दम का रोगी है। इधर हवा बन्द हुई, और उधर दादा शहबाज़ सारे गाँव को रोता छोड़कर ये हो गये। क्यों दादा ?"

दादा शहबाज़ पेंशनर फ़ौजी, जो बुढ़ापे के अन्तिम बिन्दु को छू लेने के बावजूद सच्ची बात और मज़ाक़ से न चूकता था, पोपले मुंह को फैला कर बोलता—"हम तो भाई मटका भर लेंगे हवा से और छिपा देंगे उसे कूड़े के ढेर में। जब भी हवा न मिली तो कूड़ा हटाया, मटके पर से ढकना खसकाया, फेफड़े भर लिये और फिर मटका बन्द। तुझे एक बूँद भी दें तो नाम बदल डालना। कनकौवा रख देना, हाँ।"

और फिर ठहाके लगते, तम्बाकू के धुंए उड़ते, खाँसियों के पटाखे छूटते। शमशेर हर किसी पर फब्ती कसता—"अबे आराम से खाँस। ऐसी खाँसी भी क्या जैसे ऊँट का घुटना फूटे।"—"अबे सँभल कर बैठ, तूने तो दूकान खोल रक्खी है !"—लेकिन जब वह घर आता तो थलथलाते हुये पेट वाला महाजन दोहरे माथे में तेहरे बल डालकर उसकी कोठरी में किसी झिरी के रास्ते आ निकलता और अँधेरे में सूखे-सड़े पंजे उसकी तरफ़ लपकते, और सड़ी हुई कोठरी की चमकती झिरियाँ बल खाकर साँपों की तरह रेंगने लगतीं।

"दिया बुझा दो दिलेर," वह पुकार उठता—"तेल बेकार खर्च हो रहा है।"—और फिर अपनी आवाज़ सुनकर वह चौंक उठता। आधी रात को उठकर संदूक खोलता कि शायद किसी कोने में, कपड़े की किसी

सिलवट में कोई नोट अटक कर रह गया हो और फिर रज़ाई की शरण में घुस जाता। सुबह को उठता तो उसकी कनपटियों पर बालों का एक और गुच्छा काले से सफ़ेद रूप में परिवर्तित हो चुका होता।

"यानी मैं बूढ़ा हो रहा हूँ," उसने एक दिन सोचा, और बनारसी पगड़ी उतार कर पलंग पर पटक दी। इसके बाद प्रतिदिन सफ़ेदी रंगीनी की जगह लेती गई। लोग हैरान हो गये कि शमशेर पर बुढ़ापा अचानक पहाड़ की तरह क्यों टूट पड़ा?

एक दिन पटवारी ने चौपाल पर आकर यह ख़बर सुनाई कि अंग-रेज़ ने जर्मन के ख़िलाफ़ लड़ाई का एलान कर दिया है, कमज़ोर राष्ट्रों की हिफ़ाज़त के लिए। शमशेर की आँखें चमक उठीं। अपने स्वभाव के विरुद्ध इतनी बड़ी घटना पर अपनी राय न प्रकट की बल्कि चुपचाप बैठा रहा। चेहरे पर कई रंग आये और गये, और अन्त में उठा, लपक कर घर आया और दिलेर को अलग ले जाकर कहा—"लाम छिड़ गई, तूने उस दिन कहा था न कि अंगरेज़ों का छतरी वाला वज़ीर ख़्वाह-मख़्वाह जर्मन को राज़ी करने के लिये दौड़-धूप कर रहा है। तूने ठीक ही कहा था। शुक्र है ख़ुदा का कि तूने मिडिल तो पास कर लिया, नहीं तो हम अनपढ़ लोग तो सारी उम्र अंधेर नगरी में बिता देते हैं। तो बात यह है दिलेर बेटा···"

उसने लाख चाहा कि ज्ञानेन्द्रियों को काबू में रक्खे, उसका रंग न बदले, उसके होंठ न काँपे, उसकी भवें न सिमटें, पर उस समय उसके व्यक्तिगत स्वार्थ ने पितृप्रेम के ख़िलाफ़ लड़ाई का एलान कर दिया था। एकदम रुक कर वह सीधा हो बैठा और फिर इस प्रकार बोला मानो यह सम्वाद उसने वर्षों से रट रक्खा था—"बात यह है दिलेर बेटा कि पिछली लाम में जो पढ़ा लिखा जवान फ़ौज में भरती हुआ वह लौट कर तहसीलदार, डिप्टी कलक्टर और कप्तान पुलीस बन गया। मैंने ऐसे कई मुन्सिफ़ देखे जो बात करते थे तो ऐसा लगता था जैसे फ़ौज

को हमले का हुक्म दे रहे हो—तो अब मेरे ख़्याल में अल्लाह का नाम ले और भरती हो जा। मौत से डरना जवाँमर्दों का काम नहीं। यह घड़ी तो मुक़र्रर है, टाले टल नहीं सकती। जंग के तूफ़ान से लाखों बच कर निकल आते हैं, और यहाँ करोड़ों कच्चा खरबूज़ा खाकर या चर्बी का हलुवा ठूस कर या ऐसे ही बैठे-बिठाये हँसते-खेलते दम तोड़ देते हैं, चल-चलाव तो लगा ही रहता है। तो फिर मेरे बेटे; मैं चाहता हूँ कि जब तू लाम से लौट कर आये तो बहुत बड़ा अफ़सर बनकर आये। लोग तेरा नाम लें तो मैं फ़ख्र से अकड़ जाऊँ। सच जान, इस तरह मेरे सफेद होते हुये बाल फिर से काले होने लगेंगे। दिल का इतमीनान सबसे बड़ा खिज़ाब है।"

दिलेर खाँ फौजी सिपाहियों की खड़खड़ाती हुई तहमद, दो घोड़ा वाली बोस्की की क़मीस, बनारसी पगड़ियों और फिर इत्र की फुरेरियाँ और उँगलियों में नाचता हुआ सुबुक-सा बेत, कलाई पर घड़ी और इन सबसे बढ़कर उनकी अकड़ कर सान से चलने की अदा, सबसे प्रभावित था और यह प्रभाव उस समय और गहरा हो जाता था जब गाँव की हर उठती जवानी इत्रकी ख़ुशबू, कलाई की घड़ी और रंग-बिरंगी अंगरेजी मिठाइयों के चक्कर में आकर रोज़ किसी-न-किसी फ़ौजी की ही सम्पत्ति बन जाती थी। इसके साथ ही वह यह भी जानता था कि उसके बाप पर समय से पहले बुढ़ापा क्यों आया जा रहा है और रात को घर में देर तक चिराग़ जलाने की मनाही क्यों है ?

मगर अभी शादी के नाख़ूनों पर मेंहदी की लाली भी नहीं मिटने पाई थी, यद्यपि उसने शादी के दस दिन बाद ही सारे घर का काम सँभाल लिया था और नई-नवेली दुल्हनों के पुराने रिवाजों के विपरीत घर की झाड़-पोंछ के अतिरिक्त तालाब से सब घर वालों के कपड़े तक धो लाती थी, लेकिन आख़िर वह अभी दुल्हिन थी। उसकी चूड़ियों के छनाके में संगीत था, उसके स्वर की मधुरता और नर्मी में ताज़े खून की

गर्मी संगीतमयी धड़कनें सी पैदा करती थी। वह क़दम उठाती थी तो ऐसा लगता था मानों दूसरा क़दम धरती पर नहीं आयेगा, हवा में पड़ेगा और वह ऊपर उभर जायगी और उभरती चली जायगी। उसकी लम्बी आँखों को सुरमे की रेखा अभी तक अर्द्धनिद्रा की मादकता प्रदान करती जा रही थी। लजाते समय अभी तक उसकी दायीं भौं ऊपर उठ कर धनुष की भाँति झुक सा जाती थी और गोरी ठुड्डी की गोलाई बुलबुले की भाँति कँपकँपा उठती थी। दिलेर खाँ के निकट इतनी बड़ी पूँजी को छोड़ जाना कायरता थी, लेकिन जब लड़ाई की घोषणा के साथ ही गाँव नौजवानों से खाली होने लगा और कुछ लोगों ने उसकी हिचकिचाहट पर फ़ब्तियाँ भी कसीं तो वह एक दिन सुबह के समय अपने बाप से आँसुओं से भीगी दुआयें लेता और शादाँ के तपते हुये होंटों के गहरे कोनों का अमृत पीता गाँव से विदा हो गया।

दिलेर खाँ के जाते ही घर खाली-खाली दिखाई पड़ने लगा। शादाँ भी उदास रहने लगी। हर वक्त पड़ी खाट तोड़ रही है। बरतनों में चिड़ियाँ नाच रही है, आँगन में कौवों ने ऊधम मचा रक्खा है। सुघड़ापे और गृहस्थी का सारा जादू टूट गया। ज़ेवर उतरने लगे। रेशमी लहँगे का किनारा ज़मीन पर घसिटते-घसिटते बेरंग हो गया। आँखों में भूले से सुरमा पड़ता भी तो दिन ढले तक बह जाता। शमशेर उसे दिलासा देने की कोशिश करता था किन्तु जानता था कि जवानी में प्रेम पूजा का स्थान रखता है, और शादाँ तो वैसे ही मजबूर है। उसे बहुत अधिक काम नहीं करना चाहिये लेकिन यह उदासी, ये आँसू, ये जमाहियाँ।

"शादाँ बेटी, यह बुरा शगून है। जवाँमर्दों का कोई वतन नहीं होता। वह उम्र भर निखट्टू बन कर घर में पड़े नहीं रह सकते। ख़ुदा के लिए हँस खेल, मुस्करा—सुनती है शादाँ बेटी?"

शादाँ शमशेर की ओर इस प्रकार देखती मानों कह रही हो, "ठीक

है, हँसना-खेलना बड़ी अच्छी बातें हैं, पर किससे हँसूँ ? किसके साथ खेलूं ? बूढ़े चचा, तुम क्या जानो—तुम क्या जानो ?"

शमशेर सब कुछ जानता था। वह हर हफ्ते दिलेर के खत का झूठा बहाना करता। "आज फिर खत आया है।" वह कहता—"लिखता है, शादाँ से कहिये कि मेरे लिए दुआ किया करे। उदास न रहे। गरज़ कड़क, और धुआँधार तूफानों के बाद आस्मान साफ़ भी हो जाता है, सूरज भी चमकता है, हरी-भरी घास भी उगती है।"

शादाँ को कभी-कभी सन्देह होता है कि चचा झूठ बोल रहा है। आख़िर उसने छः महीने दिलेर के साथ बिताये थे, और वह जानती थी कि दिलेर मिडिल पास सही, पर उसे ऐसी बातें बिलकुल नहीं आती। उसे तो माहिए, ढोले, टप्पे और दोहे के सिवा कुछ भी नहीं मालूम। और ये तो बड़ी समझ की बातें हैं।

इधर शमशेर के मन में शमशेर और दलेर के वज़न पर कई नाम घूमने लगे थे, पर उन सब में शेर खाँ उसे कुछ ऐसा भाया कि उसने वक्त से पहले गाँव भर में अपने पोते का नाम मशहूर कर दिया।

"और अगर लड़की हुई ?" किसी ने पूछा।

"तो शेरनी" शमशेर ने जवाब दिया।

"मैं कहता हूँ अगर न लड़का हुआ न लड़की, तो ?" दादा शहबाज़ के पोपले मुंह पर गोल-गोल मुस्कराहट नाचने लगी।

"औरतें लड़का-लड़की के सिवा और भी कुछ जनती है क्या ?"

"हाँ, हाँ !"

"क्या ?"

"यही लंगूर, गीदड़, बन्दर।"

लोग गम्भीर हो गये, क्योंकि वह विषय साधारण नहीं था बल्कि खास शादाँ से उसका सम्बन्ध था और शहबाज़ अपनी आदत के मुताबिक़ ज़्यादती पर उतर आया था।

पर शमशेर ने कहा—"भाई चचा, मज़ाक़ का कोई तुक भी तो होना चाहिये। यह क्या कि ढेला खींच मारा और कहा कि हम तो मज़ाक कर रहे थे।"

"मुंशी जी से पूछ लो।" दादा शहबाज़ हार कब मानता था, "क्यों मुन्शी जी, तुमने खबर पढ़ी थी न ? अमरतसर में एक औरत ने बन्दर जना है, ज़िन्दा है, अस्पताल में है, माँ का दूध पीता है। अलबत्ता दुम ज़रा छोटी है।"

दादा शहबाज़ का मज़ाक़ असह्य हो चला था पर शमशेर को वह दिन नहीं भूले थे जब उसने दादा शहबाज़ की एक मोटी-ताज़ी शर्मीली बहू के पेट को थपथपा कर कहा था, "तुम्हारी जवानी हज़ारों साल ही बहार दिखाती रहे।"

और जब बच्चा पैदा हुआ तो वह सचमुच शेर ही निकला। बड़े-बड़े हाथ-पाँव, मोटा सिर, गोल चेहरा, गोरा रंग।

"हे दादा शहबाज़!" मारे खुशी के उसके गले से इकट्ठी आठ दस आवाज़ें निकल गईं—"सुनते हो ? शेर पैदा हुआ है शेर!"

"च च च।" दादा शहबाज़ ने हमदर्दी जताई—"हाय हाय, इन्सान के घर में जानवर। तेरे खेल न्यारे हैं रे मौला! लड़की ही होती पर यह शेर, यह दुम वाला शेर, शमशेर मैं तुम्हारे किसी काम आ सकता हूँ ?"

शमशेर बूढ़े का हाथ पकड़ कर घर ले आया। नन्हा दिखाया और फिर उसके मुंह में मिस्री की डली ठूस कर बोला—"सीधी तरह मुबारकबाद दे नहीं तो दूसरी डली से बाछें चीर डालूँगा।"

शहबाज़ चूकने वाला कब था। मिस्री के एक तरफ़ के जबड़े में संभाल कर बोला—"हम सोलह-सत्तरह रुपये के बदले फ्रांस के मैदानों में जानें देने जा निकले थे। मिस्री की डली के बदले बाछें चीरी गईं

तो वारे न्यारे हैं हमारे। जा, नहीं देते मुबारक···।" और फिर गंभीर होकर उसने शमशेर पर मुबारकबादों की बौछार कर दी।

दिलेर अभी झाँसी में ही था कि उसे बाप बन जाने की खबर मिली। तुरन्त रेशमी कपड़ों की एक गठरी पारसल से भेजवा दी। इधर शादाँ को हँसने-खेलने का बहाना हाथ आ गया उधर शमशेर के चेहरे की झुर्रियाँ प्रसन्नता की लहरों में मिटने लगीं और उसका हँसी-मज़ाक फिर बढ़ गया। अब उसे हर महीने बेटे की तरफ से बीस रुपये मिल जाते थे और वह हर रोज महाजन की दूकान के सामने से गुजरते हुये कहता था—"बस एक साल चाचा, एक-एक कौड़ी चुका दूँगा। पर देखो, वह जो तुम पचास के पाँच सौ और हजार के दस हजार बना लेते हो न, वह जादू का खेल मुझे न दिखाना। मैं मदारियों से नफरत करता हूँ।"

महाजन हँसता। यह हँसी पहले तो उसकी चुंधी आँखों में चमकती, फिर गालों के पहाड़ों में होंठों की खाई पैदा होती और पेट अधकटे मुर्गे की तरह तड़पने लगता। पेट के काफी देर तक तड़पने के बाद उसके गले में गड़गड़ाहट पैदा होती,साँसों में परस्पर द्वन्द युद्ध होता और ठहाके, खाँसी, छींक और चीख का एक मिश्रण बन-बन कर उसके नथुनों और होंठों से एक धमाके की तरह उबल पड़ता और फिर एक लम्बी डकार के बाद महाजन कहता—"बड़े पापी हो तुम।"

शमशेर खाँ अक्सर कहा करता था कि महाजन का ठहाका सबसे पहले उसके उदर में जाग कर अंगड़ाई लेता है, फिर चर्बी की एक तह से सिर निकाल कर इधर-उधर झाँकता है, उभरता है, पर जब ठोड़ी तक पहुँचता है तो भटक जाता है, एक हिस्सा नथुनों और दूसरा मुँह के रस्ते बाहर निकलता है, तीसरा हिस्सा ठोड़ी की गुदगुदी आरामगाह में लेट रहता है और जब महाजन हँस चुकता है तो यह शेष भाग डकार बन जाता है।

बहुत कम लोग जानते थे कि महाजन के ठहाके की तरह उसके जीवन का प्रत्येक पहलू और और उसकी प्रत्येक गति एक लम्बी क्रिया का अभ्यस्त बन चुकी थी। लाल-लाल बहियों के लम्बे-लम्बे पन्नों में काली सियाही की नन्हीं-नन्हीं बिन्दिया कई घिरौंदों के सर्वनाश का कारण बन चुकी थी, और नित्य रात के समय कड़ुवे तेल के हलके प्रकाश में इन बिन्दियों में वृद्धि ही होती रहती थी। और फिर वह बहुत सुबुक से चाकू की खुरचनी' और वह घिसा हुआ मोम—और "हरे राम", हरे राम !"

एक दिन शमशेर को दिलेर का खत मिला कि यद्यपि वह नन्हे शेर खां को देखने के लिए बेहद बेताब है लेकिन सरकारी हुक्म के मुताबिक़ वह किसी अज्ञात स्थान को जाने के लिये आजकल कराची में है। वहाँ से वह बराबर खत लिखता रहेगा। कुछ दिनों के बाद शमशेर को मालूम हुआ कि दिलेर समुद्र पार जा चुका है और अपनी तीन-चौथाई तनख्वाह उसके नाम लिखवा गया है। शमशेर का उद्देश पूर्ण हो रहा था, लेकिन वह पटवारी से हिटलर के नित्य नये हमलों और विजयों के क़िस्से हर रोज़ सुनता था और उन लोगों पर उसे बहुत तरस आता था जो उस गरजती, गूँजती और बिजली की सी तेज़ी से बढ़ती हुई फ़ौज के सामने डटे हुए हैं।

"कुछ सुना शमशेर खाँ ?" एक दिन पटवारी ने उसे एक खबर सुनाई—"दस दिन हुये मैंने तुम्हें बताया था कि जर्मन दुनिया के सबसे खूबसूरत शहर पेरिस में दाखिल हो गये। अब आज की खबर है कि फ्रान्स ने जर्मनी के सामने हथियार डाल दिये।"

"दस दिन में सारे मुल्क फ्रान्स पर क़ब्ज़ा ?" शमशेर बोला—"हलुवे की तरह निगल गया कमबख्त।"

"फ्रान्स है भी हलुवा," दादा शहबाज़ चहका—"मीठा-मीठा, ताज़ा-ताज़ा, रंग बिरंगा।"

अचानक शमशेर सीधा बैठ गया। फिर बोला—"यह फ्रान्स कहीं दूर है न मुन्शी जी? कराची से अगर ११ जून को चले तो २२ जून तक फ्रान्स पहुँच सकता है क्या?"

उसे तसल्ली दी गई कि दिलेर अभी फ्रान्स नहीं पहुँच सका होगा। लेकिन अब पटवारी हर रोज उसे एक रोमांचकारी खबर सुनाता और उसके चेहरे पर झुर्रियाँ फिर से उभरने लगती। 'इंगलैंड पर हर रोज तड़ातड़ हमले हो रहे हैं, मकान जल रहे हैं, इमारतें गिर रही हैं, मलबे से नीचे से औरतों और बूढ़ों-बच्चों और जवानों की लाशें, और खून के छींटे, अंगरेजों के खून के छींटे, हमारे हाकिम के खून के छींटे!"

"भई समझ में नहीं आती यह बात" एक सरल किसान ने हुक्के के लिये तम्बाकू मसलते हुए कहा—"अंगरेज़ भी मरते हैं क्या?"

शमशेर को मन के बहलावे के लिये एक विषय हाथ लग गया, "नहीं-नहीं मेरे भाई, अंगरेज़ कहाँ मरता है। अंगरेज़ तो क़ुतुब साहब की लाट है, सागवान की धन्नी है, लोहे का ढाँचा है। अरे भाई, अंगरेज़ भी तो हम जैसा इन्सान है। फ़र्क सिर्फ़ इतना ही है न कि वह गोरा है, हम ज़रा साँवले हैं। उसके पास जहाज़ हैं, हमारे पास ऊँट। उसके पास बन्दूक है, हमारे पास लाठियाँ। उसके पास कपड़े की मशीनें हैं और हमारे पास बोस्तान जुलाहे की खड्डी, जिसमें उसका नन्हा बच्चा गिर कर अल्लाह मियाँ को सिधार गया था, बेचारा। और फिर अंगरेज के पास चर्चिल है और हमारे पास दादा शहबाज़, जो आवे की ढाल वाली मोड़ काटता है तो एक क़दम पर पन्दरह बार खाँसता है और जिसकी बीघा भर जमीन में से सरकारी सड़क गुज़रने वाली है।"

"और फिर पटवारी ने रोज एक ताज़ी फड़कती हुई खबर सुनानी शुरू की, "आज गाँधी जी ने हर अंगरेज़ से अपील की है कि वह जर्मनों पर अपना दरवाज़ा खुला छोड़ दे और उनसे किसी तरह की लेन न करे, जर्मन आप ही तंग आकर जर्मनी वापस चले जायंगे।"

"वाह रे मेरे मलंग साईं, बलायें दूर हों।" शमशेर टीका करता—"दुश्मन के एक चुटकी तक न लो, फिर दुश्मनी काहे की ! दरवाज़ा क्यों खुला छोड़ दो, लठ क्यों न जमाओ सिर पर, भुरकुस निकल जाय। हाय कितना जी चाहता है कि गाँधी जी चर्खे की तकली पर सूत कातने की जगह उससे किसी दुश्मन की आँख निकाल लेते।"

"दुनिया कहाँ से कहाँ निकल गई," दादा शाहबाज़ ने कहा—"और इधर से हुक्म मिलता है कि खड्डियाँ बनाओ।"

बात ठीक थी, पर वह शमशेर ही क्या जो दादा शाहबाज़ की बात पर न टोके। झट बोला—"तुमने ये बाल कड़कती धूप में सफ़ेद किये हैं दादा। हो सकता है, खड्डियों के बहाने मोरचे बनवाये जा रहे हों।"

"और यह दरवाज़े खुले छोड़ दो ?"

"यानी अन्दर आते ही दबोच लो ?"

"और यह चरखा चलाओ।"

"यानी चरखा चलाते हुए किसी से चल जाय तो तकली चुभो दो, हत्थी दे मारो कल्ले पर।"

"लठ क्यों न दे मारो खोपड़ी पर ?"

"इस तरह दुश्मन खफ़ा हो जाता है न भोले दादा—हाँ, तो मुन्शी जी, कोई और खबर !"

"इंगलैंड ने फ्रान्स के बेड़े पर क़ब्ज़ा कर लिया है, जबरदस्ती।"

"यानी गाँधी की नसीहत नहीं मानी।"

चौपाल भर गप्पों और ठहाकों के हुजूम में वह बहुत कुछ पुराने शमशेर के रूप में उजागर हो जाता, पर घर लौटते ही उसकी आत्मा उसके चुटकियाँ लेती। दिलेर को लड़ाई पर भेजने का उद्देश्य उसके सामने आता तो वह अपने आपको अत्यन्त नीच, कमीना और स्वार्थी अनुभव करता, परेशान होकर अँधेरे में आवारा फिरता रहता है और

जब कहीं चैन न मिलता तो सन्दूक खोलकर दिलेर का भेजा हुआ रुपया गिनने लगता।

उन्हीं दिनों दिलेर का ख़त आया कि वह अब मिस्र में है और ख़ूब मज़े में है, और मिस्री अज़ान बड़ी सुरीली होती है और मिस्री लोग बड़े अच्छे होते हैं और हम रोज़ तमाशे देखते हैं, सैर करते हैं, और—और सारे ख़त में लड़ाई का कहीं जिक्र तक न था! शादाँ ने यह सुना तो शेर को उछालती हुई आँगन में भाग गई, और शमशेर ख़त को दूसरी बार, तीसरी बार पढ़वाने के लिए पटवारी के घर की तरफ़ चल दिया।

"इटली ने सोमाली लैंड पर हमला कर दिया," एक दिन पटवारी ने ख़बर सुनाई, "सोमाली लैंड मिस्र के पास ही है।"

"अरे?"

"एक हज़ार जर्मन हवाई जहाज़ों ने इंगलैंड पर हमला कर दिया।"

"ख़ुदा की पनाह, यानी हवाई जहाज़ों का टिड्डी दल!"

"इटली ने मिस्र पर हमला कर दिया।"

"..................."

"गाँव वालों के जीवन में यह पहला अवसर था कि उन्होंने शमशेर की आँखों में आँसू देखे। वह चुपचाप चौपाल पर से उठ कर घर को चल दिया। अपने कमरे में आकर उसने सन्दूक खोला, और दिलेर की कमाई को फ़र्श पर बिखेर कर बच्चों की तरह रोने लगा। वहाँ से उठकर धम्म से पलंग पर गिर पड़ा। शादाँ भागी आई तो शमशेर बोला—"न जाने अब तक क्या कुछ हो चुका होगा, दुआ कर बेटी, दुआओं का ताँता बाँध दे! इतनी दुआएं माँग कि अल्लाह मियां के दरबार में शोर मच जाय। रो-रोकर, बिलख-बिलख कर, सिसक-सिसक कर दुआएं माँग, दिलेर की जिन्दगी के लिए दुआएं माँग और मुझ पर लानत भेज, मुझे जी भर कर धिक्कार कि मैंने क़र्ज़ा उतारने के लालच में अपने एकलौते लाल को भट्ठी में झोंक दिया। यह न सोचा

कि मैं उजड़ जाऊँगा, यह न सोचा कि शादाँ, मेरी अच्छी बेटी का सोहाग अभी नया-नवेला है, यह न सोचा कि···" उसका गला रुंध गया और वह तकिये पर सिर रख कर रोने लगा।

शादाँ मचल गई। शेर को फ़र्श पर बैठा कर शमशेर की पीठ पर दोनों हाथ रखकर बोली—"मेरे चचा, कुछ बताओ तो सही, आखिर क्या हुआ ? कुछ तो कहो।"

शमशेर ने बाँहों से अपनी आँखों को छिपा कर कहा—"दिलेर मिस्र में है और मिस्र पर इटली ने हमला कर दिया है। अब वहाँ जहाज़ बम बरसा रहे होंगे, तोपें चल रही होंगी, बन्दूकों की तड़-तड़ और गर्दों-गुबार और धुआँ और धांय धांय—मेरा नाज़ों से पला दिलेर मेरी हिर्स और लालच का शिकार दिलेर, मेरा दिलेर—मेरे दिलेर—"वह फिर रोने लगा।

छः महीने तक शमशेर और शादाँ के आँसू न सूखे और दुआयें बन्द न हुईं। माज़रों पर दिये जले, भिखारियों में गुड़ बाँटा गया, बकरे कुर्बान हुए। दोनों के हवास ऐसे बिगड़े कि रात को घर में दिया तक न जलता और अगर जलता तो जलता ही रहता। कपड़े मैल से अट जाते तो यों ही थोपथाप कर अलगनी पर डाल दिये जाते। शेर बीमार पड़ता तो किसी आती-जाती बुढ़िया से दवा पूछ ली जाती। चौपाल पर पटवारी से लोग नई खबर सुनाने का तक़ाजा करते तो वह कहता—"भाई, नई खबरें तो बहुत हैं, पर अगर चचा शमशेर न हों तो बात का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है, उन्हें आने दो।" पर शमशेर को अब चौपाल पर बैठ कर गप्पें हाँकने की फ़ुर्सत ही कहाँ थी। वे नौजवान तक उदास हो गये थे जिन पर बहुत कड़ी किन्तु मनोरंजक टीका करके वह ठहाकों का एक तूफ़ान मचा देता था।

छः महीने के बाद उसे दिलेर का खत मिला कि लड़ाई में उसके

कन्धे पर मामूली से घाव लगे थे और अब वह तन्दुरुस्त होकर जल्द ही 'इंडिया' आने वाला है।

"इण्डिया?" उसने पटवारी से पूछा।

"हाँ, यानी हिन्दुस्तान।"

"यह अंगरेज़ी है?"

"हाँ।"

"यानी दिलेर अब अंग्रेज़ी भी जानता है?"

"यही मालूम होता है।"

"अरी शादाँ बेटी!" वह घर आकर पुकारा, "कुछ सुना? दिलेर अंग्रेज़ी भी बोलने लगा, और अब वापस आ रहा है। और देख, वह मुर्गी फिर रही है न, वह गोरी सी, बाँझ कमबख्त, जो बड़े नखरों के साथ तीन महीने के बाद एक ज़रा सा अण्डा देती है, उसे ज़िबह करा ले और साथ ही गुरुगुल की दुकान से पुलाव के चावल ले आ, और देख, बड़े मटके में जो गुड़ पड़ा है न, वह बच्चों में बाँट दे।—हाँ।" और बाहर गली में आकर वह ख़ाह मख़ाह एक नौजवान के पीछे पड़ गया—"अरे ओ तुर्रेबाज़, अरे ओ बायें मुड़ते हुए दायें को देखने वाले! बात सुन, पगड़ी को इतनी कलफ़ नहीं लगानी चाहिये कि अच्छी ख़ासी मुलायम मलमल टीन का पत्तर बनकर रह जाय।"

शमशेर फिर चौपाल की रौनक़ बन गया।

"जंग की कोई नई ख़बर?" उसने पटवारी की ओर देखकर पूछा, "कोई ताज़ी ख़बर हो भई। नन्हे-नन्हे गाँव और छोटी मोटी खाड़ियां और तिल भर के टापू। न न, बहुत हो चुकी ये बातें। कोई ऐसी ख़बर सुनाओ मुन्शी जी, जो सचमुच नई मालूम हो।"

दादा शाहबाज़ एक बुड्ढे से किसी बलग़म तोड़ नुसख़े के अंश पूछ रहा था। यकायक चौंका और खिसक कर शमशेर के सामने आ गया, "क्या कहा मियाँ शमशेर? हाय-हाय, इन्सान कितना तोताचश्म है,

क़ुरान की क़सम—अरे तुम्हारा दिलेर मिस्र में था तो तुम वहाँ के हर टीले की खबर सुनते थे। और अब तुम्हारा दिलेर मिस्र से वापस आ रहा है, तो तुम नन्हे मुन्हे गाँवों और छोटी मोटी खाड़ियों का ज़िक्र ही नहीं सुनोगे ? कोई बहुत बड़ी खबर सुनोगे तुम ? तो भाई लड़ाई की बहोत बड़ी खबर तो वही होती है न जिसमें अनगिनत इन्सान खेत रहें। और मियाँ शमशेर, जो जवान तुम्हें बहुत बड़ी खबर सुनाने के लिये जान देंगे उनके भी तो बाप होंगे, उनकी भी नई नवेलियाँ बीबियाँ होंगी और मासूम बच्चे और प्यारे दोस्त, और हमदर्द रिश्तेदार। उनकी उम्मीदें, उनके अरमान और उनके हौसले। चाहे वह जर्मन हों, चाहे अंगरेज़, चाहे हिन्दुस्तानी—मैं इन्सानों की बात कर रहा हूँ।"

शमशेर का चेहरा एक भयानक लज्जा मिश्रित गम्भीरता के कुण्डल में घिर गया। मिटी हुई झुर्रियाँ फिर से उभर आईं, पहलू बदला और सिर पर हाथ फेर कर शहबाज़ की ओर देखा।

"तुम ठीक कहते हो चचा।"—उसका स्वर खोखला था और बज रहा था और उसमें घबराहट के उतार चढ़ाव थे, "मैंने तो वैसे ही बात की थी, कि—बात यह है दादा कि तुम ठीक कहते हो।"

"मैंने ग़लत बात कब कही है।" शहबाज़ उलझ रहा था।

"सिर्फ अब," शमशेर विषय बदलना चाहता था। लोग हँस पड़े।

"मेरा मतलब है, मैंने कभी नहीं कही—"

"सच बात।" शमशेर ने दादा शहबाज़ का वाक्य पूरा कर दिया और चौपाल ठहाकों से गूँज उठा।

पर शहबाज़ अपनी अनुभूतियों की कटुता से अभी तक पीछा नहीं छुड़ा सका था। बोला—"तुम मुझसे बहुत छोटे हो शमशेर ! और तुमने मुझसे कम दुनिया देखी है। पिछली लाम को इन आँखों से देख आया हूँ। सैकड़ों जर्मनों को मौत के घाट उतारा, और सच कहता हूँ,

दुश्मन की हर लाश से मेरे दिल का एक टुकड़ा चिपक कर रह गया। अंधेरी गरजती दहाड़ती रातों में मुर्दा जिस्मों से ठोकरें खाईं और ठोकर खाकर गिरा भी तो लाशों पर। किसी की अँतड़ियाँ बाहर पड़ी हैं, किसी का भेजा चट्टान पर बिखर गया है। किसी की टाँगे ग़ायब हैं। कोई मरना चाहता है और मर नहीं सकता। कोई जीना चाहता है मगर जी नहीं सकता। मैंने एक रोज़ एक लाश देखी। एक जर्मन सिपाही था। इतना खूबसूरत कि सूरत छाप लेने को जी चाहे। मैंने उसकी जेबें टटोलीं तो अन्दर से सुनहरे बालों का एक गुच्छा निकला और किसी फूल की चन्द सूखी पत्तियाँ और एक मुड़ी तुड़ी तस्वीर—एक लड़की की—जिसकी आँखें इतनी गम्भीर थीं ,कुरान की क़सम कि जहान डूब जाय। और उसकी आँखें जैसे पूछ रही थीं—'सचमुच क्या तुम वापस नहीं आओगे ?' मेरी आँखों में आँसू आ गये। तोपों की धायँ-धायँ और धुयें व धूल की उस दुनिया में मेरी आंखों में आंसू आ गये। मैंने यह तीनों चीज़ें उसकी जेब में डाल दीं, उसके चेहरे को देखता रहा और मियां शमशेर, मेरी बात सुनना। मैं सच कहता हूँ, मैं चीख कर पीछे हट गया। उसके मुंह के अचानक चन्द मक्खियां निकलीं और उसके नीले होठों और नन्हीं नन्हीं, सुनहरी मूछों पर बैठ कर पर सँवारने लगीं।—यह नौजवान भी तो दुनिया को बहुत बड़ी खबर सुनाने के लिये मरा—और मैंने उन तमाम खूनों के बदले सात रुपये पेन्शन पाई—या सात ठेकरियाँ—ये सात लानतें—"दादा शहबाज़ की आवाज़ भर्रा गई और वह लाठी सभालता चौपाल पर से उतर गया।

"चचा !", शमशेर ने उसे पुकारा।

वह बिना मुड़े बोला—"मैं पागल हो जाऊँगा मुझे जाने दो।"

"दादा" शमशेर नन्हें बच्चे की तरह पुकारा और फिर सिर झुका कर बैठ रहा एक अपराधी की तरह लज्जित और निढाल मानों संसार के समस्त युद्धों का ज़िम्मेदार सिर्फ़ वही हो।

सुबह को उठा तो शादाँ के चेहरे पर ग़ैर-मामूली ताज़गी देखकर उसकी खुशी के भाव फिर से जाग उठे, और जर्मन सिपाहियों की लाशें एक तरफ़ सरक गईं। "दिलेर आ रहा है।"—"दिलेर मिस्र से अच्छा-भला आ रहा है।"—उसके व्यक्तिगत संतोष के लिए यही खयाल काफ़ी था। और—दादा शहबाज़ की भर्राई हुई आवाज़ और डबडबाई हुई आखें—और 'मैं पागल हो जाऊँगा।'—बुढ़ापा कितना भावुक होता है, उसने सोचा।

'बुढ़ापा कितना भावुक होता है।'—उसने एक बार फिर सोचा। यानी दिलेर आ रहा है तो आकर वापस भी तो जायगा, लाम पर ही जायगा और लड़ाई से इन्सान एक बार बच निकले तो इसका यह मतलब तो नहीं कि हमेशा बचता चला जाय।

दादा शहबाज़! क़तल कर डालूँ तेरी ज़हरीली ज़बान के—बात क्या थी और तूने कहाँ पहुँचा दी!

उसने बहुत कोशिश की कि मुस्कराये, ठहाके लगाये, फब्तियाँ कसे, किन्तु उसके मानस-पट पर अकस्मात् एक सुन्दर चेहरा उभरता और फिर नीले होठों और सुनहरी मूछों पर मक्खियाँ भनभनातीं और कलेजे में संगीन घुस जाती और अँतड़ियाँ बाहर उबल पड़तीं।—वह शादाँ से कहता—"बेटी कोई बात सुनाओ," मगर वह मुस्करा कर प्याज़ काटने लगती।

"अरे भई कोई बात सुनाओ," वह गली के नुक्कड़ पर बैठे हुए लोगों से कहता।

"दिलेर कब आयेगा।" लोग उलटा उसी से पूछ बैठते।

"दादा कोई बात सुनाओ," उसने चक्कें लगाने वाले शहबाज़ से मरहम की आशा की।

"बात?" बूढ़े ने पूछा—"यानी कोई बहुत बड़ी खबर?"

और शमशेर के मन में आया कि हड्डियों के इस ढाँचे को तोड़-मरोड़ कर बबूल पर फेंक आये।

चन्द दिनों बाद उसे दिलेर का खत मिला कि वह घर नहीं आयेगा। कराची में उतरते ही उसकी रेजिमेन्ट रंगून चली गई और रंगून से सिंगापुर जाने का विचार है।

"दिलेर नहीं आ रहा है।" एक धमाके की तरह उसके होंटों से ये शब्द निकले और शादाँ जो मसाला पीस रही थी, स्तब्ध होकर दीवार से लग कर बैठ गई।

"दिलेर नहीं आ रहा है, वह रंगून जा रहा है," उसने दादा शहबाज़ की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए चौपाल पर एलान किया।

"बहुत बड़ी ख़बर है, भई" दादा शहबाज़ की लय अभी नहीं टूटी थी।

शमशेर बिगड़ गया, "देखो दादा, बहुत लिहाज़ किया तुम्हारा। तुम कुछ दिनों से हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गये हो, यह अच्छी बात नहीं। मैं तुम्हारे सफ़ेद बालों की इज़्ज़त करता हूँ, नहीं तो…" और वह ग़ुस्से से काँपता हुआ चौपाल पर से उठ आया।

पटवारी ने आवाज़ दी—"जंग में यों ही होता है भई।"

और शमशेर ने पलट कर पटवारी की ओर इस प्रकार देखा, मानों बस चले तो उसकी खोपड़ी तोड़ कर रख दें।

लेकिन उस दिन एक शहबाज़ और पटवारी क्या, वह सारे गाँव से बिगड़ गया। शादाँ तक को धुड़क दिया, "लोहे की ज़बान होती तो शायद ये मिरचें असर न करतीं मगर अब तो गले से पेट तक जलता हुआ पलीता रख दिया है तुम्हारे सालन ने—बुड्ढों को जान से मारने के और भी तो तरीक़े हैं—करछुल जमा दो कनपटी पर, कड़ाई दे मारो माथे पर,—ले जाओ मैं नहीं खाऊँगा।"

पर धीरे-धीरे वह सँभलता गया। उसका बेटा रंगून में था और

उसके खयाल में यह नामुमकिन था कि लड़ाई पश्चिम से हटकर हज़ारों मील की उलटी छलाँग लगाये और पूरब की हरियाली में अपना भीषण नृत्य शुरू करे।

"पच्छिम में क्या पड़ा है," पटवारी ने कहा था—"पच्छिम के लिए दूसरे बम और तोपें क्या कम हैं कि अब इसकी तकलीफ़ की जाय।"

"एक जापान है," दादा शहबाज़ ने एक महान राजनीतज्ञ और विचारक के अन्दाज़ में कहा था—"सो नंगी नहायेगी क्या और निचोड़ेगी क्या। बरसों से सिर पटक रहा है पर ये अफ़ीमची अभी तक उसके मुक़ाबले पर डटे हुए हैं। और भई जापानी माल तो तुम जानते ही हो। जापानी खिलौने ही देखो, इधर बच्चे के हाथ में आये और उधर दाँत निकाल बैठे।"

"नहीं-नहीं", पटवारी ने दादा शहबाज़ को टोका था—"यह बात तो नहीं दादा। मगर जंग इधर नहीं आयेगी। अभी जंग ज़िन्दा लोग लड़ते हैं, लाशों ने भी कभी लड़ाइयाँ लड़ी हैं भोले बादशाहो।"

इधर दिलेर के ख़त पर ख़त आ रहे थे। रंगून के पगोडे, बर्मा के जंगल, नारियल और केले और—"हम बड़े मज़े में हैं। रंगून बर्मा की जन्नत है, जंग न होती तो मैं शादाँ, शेर और आपको यहाँ बुला लेता।"

शमशेर पटवारी के पास दौड़ा आया, "क्या रंगून में भी लड़ाई हो रही है मुन्शी जी?"

पटवारी ने कान पर क़लम रख कर कहा—"यह जंग कहाँ नहीं हो रही है चचा? जंग सिर्फ़ तोप और बन्दूक़ की तो मुहताज नहीं। भूख की भी तो जंग होती है, ग़ुलामी की भी जंग होती है, इन्तज़ार की भी तो जंग होती है। जंग हर जगह हो रही है। रंगून में भी हो रही है, हमारे गाँव में भी हो रही है। यह सदा से चली आने वाली और

हमेशा के लिए चलती जाने वाली जंग, यह जंग जो कभी खत्म न होगी, यह जंग जो दरिया से नहरें निकालती है, जो हरे-भरे खेतों में से सड़कें गुज़ारती हैं, जो पानी पर टैक्स लगाती है, जो पुलीस के सिपाही को बादशाह का दर्जा देती है, जो ग़रीब के खद्दर में जूँ डालती है, और जो अमीरों के रेशमी कपड़ों को भी उनके बदन पर भार बनाती है। तुम हर रोज़ लड़ाई-लड़ाई, जंग-जंग पुकारते हो, जंग हर जगह जारी है। हमारी ज़िन्दगी ख़ुद एक जंग है।"

"पर जंगें खत्म भी तो होती हैं।"

"नहीं, कई जंगें ऐसी भी हैं जो क़ियामत तक जारी रहेंगी। अब यह जंग खत्म होगी तो एक नई जंग, नई लड़ाई आ धमकेगी। वह शान्ति की लड़ाई होगी, शान्ति क़ायम करने के बाद व्यापार की जंग होगी, व्यापार बढ़ाने के लिए समुद्री रास्तों की लड़ाई होगी, उनके पीछे इन्सान के जन्म-सिद्ध अधिकारों की लड़ाई होगी और जब यह लड़ाई होगी—जब यह लड़ाई होगी—" और पटवारी ने कान पर से क़लम उठाकर इधर-उधर देखा और बोला—"खतौनी कहाँ गई?"

चन्द दिनों के बाद उसने पटवारी से खबर सुनी—"जापान ने अमेरिका पर हमला कर दिया," और फिर इतने ही दिन बाद उसे मालूम हुआ कि जापान ने सिंगापुर ले लिया।

पर दिलेर तो रंगून में था और रंगून सिंगापुर से बहुत दूर है। घर आकर उसने शेर को उठाया और आँगन में टहलने लगा, "तेरा अब्बा रंगून में है और जंग हो रही है सिंगापुर में, और सिंगापुर बहुत दूर है रंगून से।" बालक ने नाक पर हाथ रगड़ कर दादा के बाल पकड़ लिए और जब बड़ी मुश्किल से उसने बालक से बाल छुड़ाये तो बालक रोने लगा। शादाँ भागी आई। वह भी रो रही थी। उसकी आँखों के डोरों में ख़ून था, उसके गालों में ख़ून था, उसके होंठों पर ख़ून था। उस समय सूरज डूब रहा था। शमशेर ने अनुभव किया कि

समस्त सृष्टि पर इन्सानी ख़ून के छींटे बिखर गये हैं, लाशें पहियों के नीचे चटख़ रही हैं, खोपड़ियाँ हवा में उड़ती फिर रही हैं, किसी दैवी हाथ ने क्षितिज पर से लपक कर खेतों की हरियावल को निचोड़ लिया है और हर तरफ़ अँधेरा ही अँधेरा है जिसमें ताज़े ख़ून की गन्ध है, सड़ती हुई लाशों की गन्ध है, झुलसे हुए चमड़े की गन्ध है।

"दिया जलाओ," वह पुकारा।

कुछ देर तक इन्तज़ार करने के बाद वह भड़क उठा और सहन में जाकर चिंघाड़ा—"शार्दां, मैं बक रहा हूँ, दिया जलाओ।"

वह इस भयानक ख़ामोशी को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। दाँत भींच कर चिल्लाया—"दिया जलाओ शार्दां, मुझे अँधेरा निगल जायगा।"

दरवाज़े पर किसी ने कुण्डी खटखटाई। वह उसी आवेश में चिल्लाया—"कौन है?" और दरवाज़े तक गया। महाजन की ठूड्डी झुटपुटे में थैली की तरह लटक रही थी।

"अब की तुमने क़िस्त के रुपये नहीं दिये?"

"नहीं दूँगा क़िस्तें।" शमशेर ने किवाड़ पर घूँसा जमाकर कहा—"कब तक देता रहूँगा क़िस्तें?" मैंने तुम्हारी क़िस्तों के लिए अपना बच्चा मौत के मुँह में डाल दिया, अपने आँगन की रौनक़ लुटवा दी, अपनी रूह को निचोड़ कर तेरी प्यास बुझानी चाही, पर तेरी प्यास नहीं बुझेगी, जा नहीं देना क़िस्तें, बता दे जाकर अपने होनों-सोनों को—नालिश कर दे………" पीछे से शार्दां ने आकर उसे खींच लिया, "आप किससे बोल रहे हैं? सेठ तो चला गया।"

"दिया क्यों नहीं जलाया तुमने?"

"जलाया है।"

"कहाँ जलाया है? किधर जलाया है? जलाया होता तो—" मगर दिया जल रहा था और दिये की रोशनी में शार्दां की आँखें जल रही

थीं, स्वयं शमशेर का सम्पूर्ण अस्तित्व जल रहा था। वह धम्म से बिस्तर पर जा गिरा, बहुत देर के बाद करवट बदली, उठ बैठा, सिर को दबाया और हौले से बोला—"शादाँ बेटी, ज़रा इधर आकर दिया बुझा दे, तेल बेकार जल रहा है।"

दिलेर की खामोशी और खतरनाक सिद्ध हुई। तरह-तरह की आशंकायें शमशेर को परेशान करने लगीं। शादाँ घुलते-घुलते काँटा बन गई। उसका दूध सूख चला था। पड़ोस के धोबियों से वह बकरी का दूध खरीद लाती थी। पर शेर हुमक-हुमक कर माँ के सीने से चिमट जाता। इधर पटवारी नित्य नई और खतरनाक खबरें सुनाने लगा। दादा शहबाज़ शमशेर को बहलाने के अनेक यत्न करता पर शमशेर मरी हुई मुस्कराहट के साथ टाल जाता। हर रोज़ वह मदरसे जाता। जब मास्टर जी डाक खोलते तो वह बुत बना एक ओर खड़ा रहता।

"तुम्हारा खत नहीं आया चाचा," मास्टर जी कहते, और वह सिर झुकाये घर को पलट आता।

हर सुबह को मदरसे में सारा गाँव जमा होता था। सब अपने-अपने बेटों, भतीजों, नातियों और पोतों के खत लेने आते, और दुखों की गठरियाँ उठाकर वापस जाते, और फिर एक दिन अचानक डाक के भरे-भरे थैले में से सरकारी पत्रों का एक ढेर सा निकला। एक पत्र शमशेर के नाम भी था। उसे सरकार ने सूचित किया था कि दिलेर जापानियों का क़ैदी हो चुका है।

खत खुलते जाते थे और आँखें भीगती जाती थीं। यकायक एक बूढ़े ने चटाख़ से अपनी गंजी खोपड़ी पर हाथ मार कर कहा—"हाय, मैं उजड़ गया।"—और फिर हर तरफ़ सिसकियाँ, फ़रियादें और रुदन। डाकखाना मातम खाना बन गया। कोई युद्ध में मारा गया था, किसी का पता ही न था, कोई जापानी क़ैदी था—देखते ही देखते गाँव के बहुत से घरों में चीख-पुकार मच गई। छातियाँ कूटी जाने लगीं। बाल नोचे

जाने लगे। गलियों में भगदड़ मच गई। "जंग हर जगह है," शमशेर के कानों में पटवारी के ये शब्द गूँज रहे थे।

"शादाँ, शादाँ!" और सहन के कोने में बैठी हुई शादाँ ने सिर उठाया। उसकी आँखें सूज रही थीं और खुले बाल ज़मीन को छू रहे थे। "मैं सुन चुकी हूँ," उसने बिलखते हुए कहा।

"शेर कहाँ है?" शमशेर ने पूछा।

"पड़ा होगा कहीं।" शादाँ घुटनों में सिर देकर रोने लगी।

शेर अन्दर के कमरे में एक खटोले के नीचे लुढ़कता फिर रहा था। उसके मुँह में मिट्टी थी, और बालों में तिनके अटक गये थे। शमशेर ने उसे उठाया, चूमा, चूम-चूम कर उसे निढाल कर दिया और फिर उसे शादाँ के पास बैठा कर बोला—"यह सब मेरा किया-धरा है, मुझ बूढ़े खूसट का, मुझ पापी का। बेटे को यों जंग में भेज दिया जैसे जिहाद (धर्म-युद्ध) का हुक्म मिल चुका है,···मैं···मैं···" पर सहसा उसने अनुभव किया, कि यह जगह और यह मौक़ा ऐसी बातों का नहीं। पलट कर अपने पलंग पर आया। वहाँ से उठ कर मृत युवकों के माँ-बाप के पास जा निकला। एक घर में उसे पटवारी मिल गया। बोला—"बड़ा अफ़सोस हुआ चचा।"

शमशेर ने हाथ उठाकर उँगलियों को ऐसा चक्कर सा दिया मानो कह रहा है—'क़िस्मत।'

"तुम जब अपने कलेजे के टुकड़ों को जग की भट्ठी में झोंक रहे थे, तो तुम्हें किसी ने यह न बताया कि···" उस समय ज़ैलदार फ़ातिहा पढ़ने के लिए उधर आ निकला और पटवारी दबक कर दीवार से लग गया।

जापान के हमले और जीतें बड़ी तेज़ी से बढ़ रही थीं। इधर जर्मनी ने साथियों के छक्के छुड़ा दिये थे। पर अब गाँव वाले बिलकुल अनुभूति-हीन थे। उन्हें लड़ाई की कोई चिन्ता न थी, जैसे लड़ाई के साथ उनकी

सारी दिलचस्पी उनके बेटों और पोतों के कारण थी और जब वे कट मरे या कैद हो गये तो लड़ाई खत्म हो गई। बाहर चरागाहों में रेवड़ चरने जाते तो उनके पीछे बूढ़े बूढ़े गडरिये होते खाँसते और हाँफते हुए। खेतों की रखवाली करने वालियाँ अपने भाइयों और पतियों की याद में धीमे सुरों में गातीं और रोतीं, चौपालों पर अलाव के इर्द-गिर्द किसान चुपचाप बैठे रहते। गलियों में खाक उड़ती। ठण्डी कुंआरी सुबहों को बूढ़ियों की सिसकियाँ और खाँसियाँ दाग़दार कर देतीं। सुन्दरी उषा के कलेजे में खरखराते हुए गले वाले मुअाज्जिन (अज़ान देनेवाले) की आवाज़ बरछे की तरह घुस जाती। ज़िन्दगी जैसे पाँव घसीटती फिर रही थी, मारी, मारी, परेशान और तबाह हाल घूमती और चकराती हुई, ऊँची कगारों पर रुकती और गहरी खाड़ियों में ठिठकती हुई लाल गालों, चमकती आँखों और सुरीले गीतों की खोज में—पर लाल गालों को गिद्ध नोच कर ले गये थे, चमकती आँखें मिस्र के रेगिस्तानों और बर्मा के जंगलों में बुझ चुकी थीं और सुरीले गले का रस जंगली मक्खियों ने चूस लिया था,—और लड़ाई चल रही थी।—जनता की लड़ाई—प्रजातन्त्र की लड़ाई—समस्त मानव-समाज की लड़ाई—और सिन्धु नदी से एक बहुत बड़ी नहर निकाली जा रही थी, और दादा शाहबाज़ की एक बीघा ज़मीन पर से पक्की सड़क निकलने वाली थी, खाद्य-सामग्री लापता हो रही थी। एक हिन्दुस्तानी ने एक योरोपियन सुन्दरी के चुम्बन के बदले लड़ाई में हज़ारों रुपये का चन्दा दिया था और महाजन शमशेर के पीछे साये की तरह लग गया था। "थोड़ी सी रक़म तो बाक़ी रही है उसे भी चुका दो न, मुझे नया धंधा करना है!"—"नया धंधा?" और पटवारी ने महाजन का तक़ाज़ा सुन कर कहा था—"यानी अनाज का ढेर और रेजगारी की थैलियाँ और—"

'हे शमशेर चचा!'—जैसे हर गाँव वाला पुकार रहा था—"अरे कुछ बोलो, कोई फब्ती कोई, मज़ाक़, कोई चुटकला—कुछ सुनाओ भई

नहीं तो हमारी रूहें बुझ जायँगी। हमें नौजवान भाई और भतीजे और पोते रातों की खामोशियों में आ-आकर सताते हैं। लाल-लाल आँखें निकाल कर हमें अपने फटे हुए पेट, कटी हुई बाहें और नुची हुई रानें दिखाते हैं, और कहते हैं—मुबारक हो, मुबारक हो, मुबारक हो, हे शमशेर चचा कोई बात सुनाओ, हमारे कानों में, हमारे अज़ीज़ों की कराहें बर्मे की तरह घुसी जा रही हैं। हमारी विधवा बहनें, हमारी लुटी हुई बेटियाँ, हमारे कुचले हुए बच्चे!—शमशेर चचा, हे शमशेर चचा।"

पर शमशेर चचा पर तो कोई और धुन सवार थी। वह अब चुपचाप रहने लगा था। प्रति दिन डाकखाने में जाना उसका नित्य कर्म हो गया था। वहाँ से नाकाम लौट कर वह पटवारी के पास कुछ क्षण बिताता और पटवारी के पीले-सूखे हुए चेहरे में टंसी हुई बड़ी-बड़ी बेरौनक़ आँखें चमचमा उठतीं, वह कहता—"ये जंग कभी खत्म न होगी, यह जंग दुनिया की आखिरी जंग है। इस जंग में इन्सान जल बुझ कर भस्म हो जायगा और फिर उस राख से एक नया इन्सान बनेगा जो सही मानों में इन्सान साबित होगा। वह एक घर की आबादी के लिए बीस घर नहीं उजाड़ेगा, वह एक इन्सान को मोटर दिलाने के लिए सैकड़ों इन्सानों की टाँगें नहीं काटेगा, सारी दुनिया की पैदावार के सारी दुनिया वाले मालिक होंगे, उस वक़्त, चचा शमशेर—सिर्फ़ उस वक़्त—सिर्फ़ तभी—" और वह कान पर से कलम उठाकर कहता—"खतौनी कहाँ गई?"

महाजन की दूकान के सामने से गुज़रता तो महाजन बड़ी नम्रता से कहता—"भई, चुका दो ना बाक़ी हिसाब। अब नया धन्धा शुरू करना है। और फिर अब तो तुम्हारा बेटा क़ैदी है। उसकी सारी तनखवाह तुम्हारे नाम आती होगी!"

"अब तो तुम्हारा बेटा क़ैदी है!—अब तो तुम्हारी क़िस्मत जाग

उठी !—अब तो तुम्हारी बरसों की तमन्ना पूरी हुई—अब तो तुम्हारी पाँचों घी में हें ! धिक्कार हो !" शमशेर को हर कोई चर्के लगाता था। दादा शहबाज़ भी, जो कहता था—"आ जायगा, क़ैदियों को तो हुकूमतें बड़े आराम से रखती हैं, दिलेर ज़रूर आयेगा।" दादा शहबाज़ उससे हँसी करता था।

धीरे-धीरे गाँव पर शान्ति छाती चली गई, पर इसमें ज़िन्दगी कम थी और मौत ज़्यादा। हवाओं में विधवाओं की आहें थीं और अनाथों की कराहें थीं। खेतों का रंग कटीला था, जानवर तक उदास दिखाई देते थे। हर जुमेरात (गुरुवार) को चौपाल से परे के गाँव में, क़ब्रस्तान में बुज़ुर्गों की क़ब्रों पर चिराग़ों की क़तारें जलने लगीं। हर माँ, हर पत्नी और हर बहन जुमेरात को मिट्टी के दिये में तेल भरकर बुज़ुर्गों के मज़ार के पास जाती और उनके सिरहाने दिये रखकर दुआयें माँगती—"मेरा बेटा वापस आये, मेरा मालिक लौट आये, मेरा भैया लौट आवे।"

"कोई वापस नहीं आयेगा," पटवारी ने कहा था—"मैं कहता हूँ, तुम जिन भाइयों और बेटों को वापस बुला रही हो वे कभी वापस नहीं आयेंगे। वे मर चुके हैं या मर रहे हैं। उनके दिमाग़ मर चुके हैं, उनके विश्वास मर चुके हैं उनके जिस्म शायद वापस आ जायँ लेकिन वे अपनी रूहों को वहीं दफ़न कर आयेंगे और इसलिए जब वे वापस आयेंगे तो तुम्हारे बेटे और भाई नहीं होंगे वे धरती के बेटे होंगे, दुनिया के भाई होंगे और जब मैक्सिको में किसी हब्शी पर कोई अमेरिकन गोली चलायेगा तो वे दर्द के मारे चिल्ला उठेंगे, जब शंघाई में कोई जापानी किसी चीनी के थप्पड़ मारेगा तो वे बिलबिला उठेंगे, जब दिल्ली में कोई गोरा किसी हिन्दुस्तानी के भेजे पर लात जमायेगा तब तड़प उठेंगे और पुकार उठेंगे और उनकी पुकार हिन्दुस्तान से निकल कर लन्दन के क़िलों से टकरायेगी, वाशिंगटन के महलों में गूँजेगी, रूस के......।"

"मेरे ख़याल में यह पटवारी या तो बम बनाने लगेगा या कैद हो जायगा," ज़ेलदार ने एक दिन तंग आकर कहा था।

पटवारी की बातें शान्त तालाब की सितह पर गिरते हुए नन्हे-नन्हे कंकड़ों के सामान थीं। लहरों के दायरे बढ़ते हुए फैलने लगते और मिट जाते और फिर तालाब सो जाता।—एक साल बीत गया, दो साल बीत गये। कभी-कभी योरुप के मोर्चे से किसी नौजवान की मौत की खबर आती तो इस तालाब में चट्टान-सी गिर पड़ती। तालाब थलथला कर रह जाता, लहरें देर तक उसकी सितह पर नाचती रहतीं और फिर शान्ति छा जाती—शान्ति, जो हर अन्त का आरम्भ है।

ठीक ही तो है। वे विधवायें जिनके बिखरे बाल, सूखे होंठ और छलकती हुई आँखें देखकर सृष्टि भी सिसकियाँ लेने लगती थी, वे बहनें जिनकी चीख-पुकार की सच्चाई और जिनका भाइयों के प्रति प्रेम अमर और असीम लगता था अब द्वारों में बैठकर चर्खे चलातीं, चुहलें करतीं, ठहाके लगतीं, ठहाके मारतीं और कहतीं—"तेरी ओढ़नी का रंग तो बिलकुल नये ख़ून-सा है बहन नूरी!" "और तेरी लौंग? इतनी अच्छी नाक पर ऐसी भोंडी लौंग, जैसे मिश्री की डली पर मकोड़ा चिपक कर रह जाय।" नाकों, आँखों, बालों और ओढ़नियों के गोरखधन्धे में घिरी हुई ये पत्नियाँ और बहनें मिस्र की रेतों और बर्मा की घासों में गली हुई हड्डियों को भूल चुकी थीं। सिर्फ़ माओं का प्रेम जीवित था, वह असीम से बड़ा अनन्त, अपरिमित प्रेम, जो परिवर्तन का नाम नहीं जानता, जो ईश्वर की तरह अटल है।—अँधेरी संध्याओं में जब ये बूढ़ी मायें पल्लू के नीचे दिये छिपा कर बुज़ुर्गों के मज़ारों पर जातीं और जब मज़ारों पर सजे हुये दिये जो अब तादाद में बहुत कम रह गये थे, हवा के झोंकों में अपनी लाल-पीली ज़बानें थरथराते और पास बैठी हुई माओं के उतरे हुए चेहरों में धँसी हुई आँखें टूटते हुए तारे की भाँति चमक उठती तो शमशेर, जिसकी खामोश

इस बीच आवारगी का रूप धारण कर चुकी थी, लपक कर घर आता और नन्हें शेर को पास बैठा कर शादाँ से कहता—"बेटा, आज जुमेरात है, दिया तो जला दिया होता मज़ार पर, कौन जाने इसी तेल के सदक़े में खुदा हमारे घरौंदे में फिर से उजाला करदे," तो शादाँ अँगड़ाइयों का का ताँता बाँध कर उठती और कहती—"बहुत दिये जलाये चचा, और फिर दिये बुझ जाते हैं तो मुजाविर दिये उलट कर तेल ले जाते हैं। दिये जलाने से क्या होगा?"

शमशेर के लिये दिलेर की दूरी अब इतनी चिन्ताजनक नहीं रही थी जितना शादाँ का परिवर्तन! दिलेर की क़ैद के एक ही साल के पिछले महीनों में उसके दुबले-पतले जिस्म में ताज़ा खून दौड़ने लगा था। सुबह उठकर बनाव-सिंगार में कितनी देर लगा देती थी। अच्छे से अच्छे कपड़े पहिनती, शेर को घुड़कती और पड़ोस में धोबियों के घर चली जाती। हर महीने दिलेर की तनख्वाह से दस रुपये शमशेर से ज़बरदस्ती ले लेती। "मुझे भी तो ज़िन्दा रहना है," वह कहती—"महाजन का हिसाब शैतान की आँत बनता चला जाय तो मेरा क्या बस। मेरा भी तो हक़ है।"

शमशेर चुपचाप हर महीने दस रुपये उसके हवाले कर देता। वह जानता था कि जंग में सिर्फ़ जानें ही नहीं, आबरुयें और इज़्ज़तें भी मटियामेट हो जाती हैं।

"सभलो, संभलो," दादा शहबाज़ कहा करता था—"संभलो शमशेर, चौकन्ने होकर रहो, आखिर दूसरों के बेटे भी तो क़ैदी हैं।"

पर शमशेर को संभलने का मौक़ा ही कहाँ था। वह सदैव के लिये डगमगा चुका था, उस लट्टू की भाँति, जो ज़मीन पर गिरता है तो एक जगह ठहर नहीं सकता। उसकी नोक को मानो ज़मीन के अन्दर से कोई चीज़ उछाल कर फेंक देती है, उसे कोई केन्द्र नहीं मिलता, कोई मंज़िल नहीं मिलती। संभलने के लिये फ़ुरसत चाहिये और शमशेर के पास

बहुत कम फ़ुरसत थी। मोर्चों पर से महीने में एक-दो मौतों की खबर आ जाती तो वह फ़ातिहा के लिये चला जाता। लोग शान्ति के लिये क़ुरान के पाठ कराते तो उनमें सम्मिलित हो जाता और जब पलटता तो पटवारी कहता—"शान्ति, अमन ! अमन तो सिर्फ़ एक शब्द है, अमन जंग का दूसरा नाम है, और अमन की जंग असली जंग से ज़्यादा खतरनाक होता है। बंगाल का अकाल क्या था ? यह अमन की जंग थी, शान्ति की लड़ाई थी। यह हर चीज़ की मंहगाई ? यह अमन की जंग है। यह अपहरण और व्यभिचार के नित्य नये क़िस्से, यह अमन की जंग है,......अमन ? तुम अमन के लिए दुआयें माँगते हो ? हालाँकि तुम दो सौ बरस से अमन के मज़े लूट रहे हो, दो सदियों से तुम इस चुपचाप लड़ाई में शामिल हो। ऐसी जंग, जो तुम महसूस नहीं कर सकते, ऐसी जंग जो तुम्हारा ख़ून नहीं बहाती, सिर्फ़ तुम्हारे दिमाग़ और दिल को निचोड़ कर गले हुये चीथड़े की तरह परे पटक देती है......अरे, यह खतौनी कहाँ गई ?"

पर अब लड़ाई की ताज़ी खबरें उत्साहवर्धक सिद्ध हो रही थीं और शमशेर पटवारी से बहस करने लगा था—"भई अमेरिका की फ़ौज फ़िलिपाइन टापू में उतर गई है न,—बस जंग को खत्म समझो।"

"यह नई जंग की शुरुआत है," वह खतौनी को घुटनों तले रख कर कहता।

"रूसी बर्लिन में घुस गये।"

"यह नई जंग की शुरुआत है।"

"मुसोलिनी को सूली पर चढ़ा दिया गया।"

"यह नई जंग की शुरुआत है।"

"योरोप में जंग खत्म हो गई।"

"अब नई जंग शुरू होगी।"

"जापान के हीरोशीमा नगर पर एक नया बम गिराया गया—एटम बम," ज़ेलदार ने कहा।

"मुझे मालूम है।"

उस दिन शमशेर की आँखें चमक उठीं और होंठों की पपड़ियाँ उचट कर गिर गईं। बहुत दिनों के बाद उसने फब्ती और मज़ाक़ की ओर ध्यान दिया।

"बड़ी देर के बाद आये हो भई," उसने एक नौजवान से कहा—"सुनाओ, आजकल कौन सी गुफा आबाद कर रक्खी है?"

और फिर—"अबे खुल कर क़दम उठा यों चल रहा है जैसे तहमद खुल गया हो तेरा।"

ऐटम बम की ख़ुशी में उसने एक बुढ़िया पर भी हमला कर दिया—"लहंगा संभाल खाला, कहीं खुल न जाय।"

बुढ़िया पलट कर खड़ी हो गई और फिर रो दी। "तुम सच्चे हो शमशेर! तुम्हारा दिलेर वापस आ जायगा न, और मेरा अहमद—वह उधर तीन साल हुए मिस्र में......" और वह रोती हुई वहीं बैठ गई। "तुम मुझसे मज़ाक करते हो। क्यों न करो, तुम्हारा बेटा जो वापस आ रहा है, और मेरा बेटा, मेरा बेटा......" सिर पर हाथ रख कर वह उठी और अपने बेटे के मातम को ताज़ा करती, सारी गली को चौंकाती चल दी।

"अरे!" शमशेर ने गली में जमा होते हुए लोगों की ओर देखा। उनके चेहरों पर दुख और क्रोध के चिह्न थे और वे सब नफ़रत से शमशेर को घूर रहे थे। "अरे!" शमशेर ने दोबारा कहा और सिर को दोनों हाथों में दबा कर वहीं बैठ गया और बहुत देर तक बैठा रहा।

रात को चौपाल पर लोग इकट्ठे हुए तो ज़ेलदार ने ऐटम बम की चर्चा छेड़ दी, "उसकी ताक़त पाँच लाख साठ हज़ार मन बारूद के बराबर होती है। जब हीरोशीमा पर बम गिरा तो जो लोग बाहर थे वे

वहीं दम तोड़ बैठे और जो अन्दर थे वे मारे उमस के तड़प कर रह गये। लाशों के चेहरे तक नहीं पहिचाने जा सकते। बम गिरा तो सात-आठ मील ऊँचा धुएँ का मीनार उभड़ आया। हीरोशीमा बिलकुल मिट चुका है, पचास हज़ार से ज़्यादा जापानी मर चुके हैं, हज़ारों अस्पतालों में हैं, हज़ारों का कुछ पता नहीं। बस अब लड़ाई को खत्म समझो।"

"हत् तेरी नेकटे नाटे की," एक किसान बोला "कैसे गरजता दहाड़ता बढ़ा था और कैसा दबोचा अंगरेज़ ने।"

"नहीं नहीं, अमरीका ने," एतराज़ हुआ।

"अबे नहीं, अंगरेज़ ने।"

"अंग्रेज़ ने।"

"अंग्रेज़ ने।"

"सारी दुनिया के दुर्भाग्य और बेईमानी ने," पटवारी बोला, और सब उसकी ओर आकृष्ट हो गये।

"जंग में ज़हरीले गेस इस्तमाल करना मना है पर ज़हरीली गेस से हज़ार गुना खतरनाक ऐटम बम इस्तेमाल करना उचित है। भई बड़े लचकदार हैं जंग के क़ानून। उस वक्त जब हिटलर ने गेस छोड़ने की धमकी दी थी तो कान्फ्रेन्सें बुलाई जाने लगीं, कमेटियाँ होने लगीं, और अब—यह ऐटम बम···!"

ज़ेलदार कड़क कर बोला—"मुंशी, बकवास बन्द कर।"

"मैं कहता हूँ," पटवारी तो मानों पागल हो गया था—"यह ऐटम बम कोई नई चीज़ तो नहीं, हम हिन्दुस्तानियों के लिये तो यह ऐटम बम कोई अजीब चीज़ नहीं। बंगाल में किस ऐटम बम ने अकाल डाला? आसाम में किस ऐटम बम ने लड़कियों की जवानियाँ लूटीं, राजपूताना और पंजाब में किस ऐटम बम ने विधवाओं और अनाथों की फ़ौज की फ़ौज पैदा कर दी। हिन्दुस्तान पर तो पिछली दो सदियों से ऐटम बमों

की बारिश हो रही है, और तुम मुँह खोले हीरोशीमा के ऐटम बम की बातें यों सुन रहे हो जैसे तुम्हारे लिये जन्नत का दरवाज़ा खुल गया— ऐटम बम की ख़बरें तुम अख़बारों में क्यों पढ़ते हो ? क़ुतुबदीन से पूछो, लाल बेग से पूछो, नूर खाँ से पूछो, चचा शमशेर से पूछो, और…"

"बकवास बन्द करो, मैं कहता हूँ," ज़ैलदार गरजा । और पटवारी थर-थर काँपता चौपाल पर से उठ कर चला गया ।

"मुन्शी पागल हो जायगा," एक आदमी ने राय प्रकट की ।

पर ज़ैलदार की क्रोधपूर्ण ख़ामोशी का मतलब यह था कि अन्य लोग भी चुप रहें । कड़ी निगाहों की घुड़की ने इस सिद्धान्त को तोड़ने वाले को कँप कपा कर रख दिया था ।

अब तो नित्य नई चटपटी ख़बरों का ताँता बन्ध गया ।

"ब्रिटेन में छः साल के बाद सब लोगों ने सही मानो में छुट्टी मनाई ।"

"रूस ने जापान के खिलाफ़ लड़ाई का एलान कर दिया ।"

"मुए को मारें शाह मदार !—जंग ख़त्म हो जायगी ।"

"जापान ने हथियार डाल दिये ।"

"रहे नाम अल्लाह का ।—लड़ाई ख़त्म हो गई ।"

लड़ाई ख़त्म हो गई—लड़ाई ख़त्म हो गई—पुतलियाँ चमक उठीं, गालों पर गुलाल फिर गये, क़ैदी और लापता बेटों की मायें लाठियाँ टेकती गलियों में आ गईं ।

"सचमुच ?—सचमुच ।"

"हाँ हाँ, लड़ाई ख़त्म हो गई, लड़ाई बिलकुल ख़त्म हो गई । अब लड़ाई बिलकुल नहीं होगी ।"

"सचमुच ?—सचमुच ?"

इतनी बड़ी सचाई को मानने के लिये भी तो शेर का कलेजा चाहिये ।

"जंग खत्म हो गई शादाँ बेटी," शमशेर घर आकर चिल्लाया और शेर को उठाकर उस पर चुम्बनों की बौछार कर दी।

"सचमुच ?" पर शादाँ के इस सवाल में खुशी की जगह तअज्जुब ज्यादा था।

"अरे, कोई यक़ीन नहीं करता। शेर बेटा ! तेरा अब्बा अब वापस आ जायगा।"

"सच ?" नन्हे शेर ने बड़ी-बड़ी गोल आँखें फाड़ कर दादा को घूरा, "क्या लायेंदा ?"

"तुम्हारी सवारी का घोड़ा, ईद के लिये कपड़े, अच्छी-सी टोपी और बूट और छड़ी और "

"पताखे।"

"हाँ-हाँ, पटाखे और फुलझड़ियाँ और···"

"खाक लायेगा," शादाँ ने बिगड़ कर कहा।

"क्यों ?" जैसे शादाँ ने बूढ़े का मुंह नोच लिया था।

"तनख्वाह तो सारी महाजन हज़म कर गया। वह तो अपनी जान भी बचा कर लाये तो शुक्र करो खुदा का।" और उसने रुपहली चूड़ियों की घुंघरियाँ छनकाईं और शेर को घसीट कर अपने कमरे में चली गई।

काँटों का वह गुच्छा जो दिलेर की कैद और शादाँ की उपेक्षा ने उसके गले में ठूंस रक्खा था, उछल कर मानो उसके मस्तिष्क में कूदने लगा। पर अब लड़ाई खत्म हो चुकी थी और अन्दर ही अन्दर घुलने से यही अच्छा था कि दिलेर की राह देखी जाय।

दो-तीन हफ्ते के बाद उसे मालूम हुआ कि अंगरेज़ों ने सिंगापुर पर दुबारा क़ब्ज़ा कर लिया है और फिर धीरे-धीरे खबरें आने लगीं कि क़ैदियों के जहाज़ हिन्दुस्तान आ रहे हैं।

'पहाड़ के नीचे के एक गाँव का नौजवान जो सिंगापुर में जापान का क़ैदी था, घर वापस आ चुका है।' उसने एक दिन हरकारे से यह सुना और उसी दिन एक छोटी-सी पोटली कन्धे पर लटका कर उस गाँव की राह ली। गाँव वालों ने भी अपने-अपने सगे सम्बन्धियों के नाम और नम्बर लिख कर दिये और वह एक ज़िम्मेदारी के साथ पुराने बादशाहों के एलचियों की भाँति पहाड़ की घाटी की ओर चला।

वहाँ जाकर उसे नवागन्तुक सिपाही से मालूम हुआ कि क़ैदी बेशुमार थे और उन्हें मलाया और जावा तथा दूसरे टापुओं में बिखेर दिया गया था इसलिए वह कोई यक़ीनी ख़बर नहीं दे सकता था। निराश होकर शमशेर घर को पलटा।

थका-माँदा, खाँसता-खँखारता, वह जब अपने गाँव से एक मील के फ़ासले पर पहुँचा तो उसने कुछ दूर पर पटवारी को अपनी ओर आता देखा। देहातियों का एक जमघट बहुत परे चुपचाप खड़ा पटवारी की ओर देख रहा था।

सूर्य अस्त होना चाहता था पर जैसे शमशेर के गाँव में पहुँच जाने की राह देख रहा था। धूप पीली पड़ गई थी, पेड़ों के पत्ते उदास और निढाल होकर बल खा गये थे। खेतों पर मृत्यु का सा सन्नाटा छाया था, अपने अपने ठिकानों को जाते हुये पक्षियों की आवाज़ों में कसक थी, पगडण्डी के लहराते हुए सुनहरे फ़ीते पर एक गधा धूल में नहा रहा था।

"वापस आ गये चचा ?" पटवारी ने पूछा।

"हाँ, वापस आ गया हूँ, नामुराद," शमशेर ने कहा—"मगर तुम कहाँ चले ?"

"मैं यहाँ से जा रहा हूँ, सदा के लिए।"

"क्यों ? ख़ैरियत तो है न ?"

"खैरियत ?" पटवारी के होठों पर एक अजीब ज़हरीली मुस्कराहट प्रकट हुई और फिर वहीं चिमट कर रह गई, "ख़ैरियत, अमन या शान्ति की तरह बेमानी शब्द है। अमन के लफ़्ज़ से अर्थ निचोड़ने के लिये मास्को में मोलोटोव, बर्न्ज़ और बेविन की कान्फ्रेन्स होने वाली है और तुम्हें ख़ैरियत का मतलब समझाने के लिये वह मजमा खड़ा तुम्हारी राह देख रहा है। जाओ बाबा, तुम, जो हर किसी का मज़ाक़ उड़ाते थे, तुम, जो बड़ी-बड़ी ख़बरें सुनने के शौक़ीन थे, तुम, जो हँसने-हँसाने के सिवा और कुछ जानते ही न थे, जाओ, वहाँ उस मजमे में दादा शहबाज़ से पूछो कि ख़ैरियत क्या चीज़ है, और फिर अपने घर जाना, वहाँ कहीं ताक़ पर तुम्हारे बेटे का तार पड़ा होगा। वह आ रहा है।"

"दिलेर वापस आ रहा है ?" शमशेर पोटली फेंक कर पटवारी से लिपट गया, पर वह लोहे की लाट की तरह निश्चल खड़ा रहा और उसी भयानक गम्भीरता से बोला—"हाँ, वापस आ रहा है तुम्हारा दिलेर, सो तुम तार उठा कर शेर को पुकारना जिसे सुबह उसकी माँ ने दिलेर का तार मिलने के बाद लाहौर के किसी यतीमख़ाने (अनाथालय) के आदमी के हवाले कर दिया है।"

"तार मिलने के बाद।"

"और फिर पुकारना, 'शादाँ, शादाँ बेटी'—तुम्हारी वह शादाँ बेटी जो शायद हेरोशीमा पर ऐटम बम गिराये जाने का इन्तज़ार कर रही थी, रात को तुम्हारे पड़ोसी धोबी के साथ भाग गई है, बन्नूं की तरफ़।"

"क्या कह रहे हो ?"

"और फिर तिजोरी खोल कर वह रुपया गिनना जो तुमने जंग की बरकत से कमाया। तुम्हें अमन और ख़ैरियत के सारे मानी समझ में आ जायेंगे।"

वह शमशेर के मुर्दा हाथ को अपने हाथ में दबा कर पलटा और पगडण्डी पर हो लिया। सूर्य नदी के परले किनारे पर फैली हुई पहाड़ियों में डूब चुका था। ऊषा ने पटवारी के सफ़ेद लिबास में आग-सी लगा दी। वह एक शोला-सा बन गया—धरती के कलेजे में से निकलता हुआ शोला—जो बढ़ता गया—बढ़ता गया—और फिर यह शोला बुझने लगा। धुँए का एक धोबा सा बन गया। पूर्वीय क्षितिज की धुन्ध में घुलती हुई यह छाया बढ़ती गई, फैलती गई—लोप होती गई, और फिर उसी क्षितिज से चाँद बन कर उभरी, जगमगाती हुई, हँसती हुई—मानो पश्चिम में दुबके हुए सूर्य का पीछा कर रही है।

महेन्द्र नाथ

मेरी दुनिया

मैं दिन-रात यही सोचता रहता हूँ कि तुम्हें क्या लिखूँ। वह कौन-सा विषय है, जिस पर साहित्यकारों ने कलम नहीं चलायी। तुमने लिखा है कि 'तुम औरत की मुहब्बत के बारे में क्यों नहीं लिखते ?' यह विषय पुराना हो चुका, और मैंने स्त्री के प्रेम के बारे में इतना लिखा है कि मेरा मन अब इन बातों से ऊब गया है। अब जी चाहता है कि मैं अपने बारे में लिखूँ—कुछ अपनी उदासी, अपने गम, अपने दुख के बारे में। शायद तुम इस उदासी, इस गम, इस दुख में दिल वालों की उदास आत्मा की एक झलक देख सको !

यह तो तुम्हें मालूम ही होगा कि मैं कितनी दूर से चल कर यहाँ आया हूँ। काश्मीर की सुन्दर घाटियों का चक्कर काट कर, पंजाब के स्वस्थ सौन्दर्य से प्रभावित हो कर, देहली और लखनऊ घूम कर और

पूना के मलेरिया बुखार से पीड़ित होकर अब बम्बई पहुंच गया हूँ। आखिर इतना लम्बा सफर क्यों? क्या इतनी फैली हुई दुनिया में मेरे लिये कोई ठहरने की जगह न थी कि मैं हिन्दुस्तान के एक कोने से चल कर दूसरे कोने तक पहुँच गया हूँ? फिर भी मुझे शान्ति नहीं मिलती, खुशी नहीं महसूस होती।

लोगों ने बम्बई की इमारतों की तारीफ की है, बम्बई की ट्रामों, बसों और रेलों को सराहा है। लेकिन मैं इन गगनचुम्बी इमारतों से कभी प्रभावित नहीं हुआ। मुझे इन ट्रामों और बसों में बैठ कर कभी आनन्द का अनुभव न हुआ। हाँ, जब कभी समुद्र के किनारे जाता हूँ, तो दिल को सुकून-सा मिल जाता है। यह फैला हुआ असीम समुद्र और उस पर काले-काले झुके हुए बादल! मानो किसी तरुणी के सियाह बाल! और दूर, बहुत दूर एक नाव लहरों पर हचकोले खाती हुई, एक अज्ञात मंजिल की तरफ जाती हुई! और फिर समुद्र के किनारे नारियल के वृक्षों के झुण्ड-के-झुण्ड! नारियल के पेड़ खूब लम्बे होते हैं, सरो और यूकलिप्टस के पेड़ों से भी ऊँचे और लम्बे। जब हवा जोर से चलती है, तो ये पेड़ हवा में झूमते हैं, लहराते हैं, और आपस में एक अजीब ढङ्ग से कानाफूसी करते हैं। और रात के समय जब हवा इन पेड़ों में से गुजरती है, तो एक अजीब-सी सरसराहट पैदा होती है। इनके लम्बे-लम्बे पत्ते हवा में लहराते हैं, किसी जवान लड़की के अस्त-व्यस्त बालों की तरह। चाँद किसी लज्जावती दुल्हिन की भाँति इन लम्बे वृक्षों की ओट में छिपा रहता है। लेकिन चाँद की सुनहरी किरणें समुद्र की लहरों की गोद में खेलती रहती हैं, उनको चूमती हैं, उनसे खेलती हैं। लहरें बढ़ती हैं, और तट से टकरा कर पीछे हट जाती हैं। शोर बढ़ता है, और फिर मद्धिम हो जाता है। रेत के कण इन चमकती हुई किरणों में चमक उठते हैं। और समुद्र की शीतल, स्वच्छ, ताजी हवा नारियल के पेड़ों में से गुजरती हुई एक उदास गीत पैदा करती है।

बम्बई में मुझे तीन चीजें पसन्द आई हैं, समुद्र, नारियल के पेड़ और बम्बई की एक्ट्रेसें ! वास्तव में इन्हीं तीन चीजों से बम्बई जिन्दा है। अगर इन तीन चीज़ों को बम्बई से निकाल दिया जाय, तो बम्बई बम्बई न रहे, शायद देहली बन जाय, या लाहौर, या यों ही एक मामूली, नीरस-सा शहर।

मैं यहाँ क्यों आया ? इसका कारण तो तुम जानते ही हो। वही पुराना कारण, जीविका की खोज। पेट की समस्या बहुत पुरानी है, किन्तु मनुष्य ने अभी तक इस समस्या का कोई हल नहीं निकाला। यदि इस समस्या का कोई उचित हल होता, तो बंगाल में इतनी मौतें न होतीं, यह भयंकर युद्ध न छिड़ा होता, यह भूख, यह गरीबी, यह प्यास न होती। इस वक्त मेरी जेब में सिर्फ चार आने हैं। और बाहर नारियल के पत्तों पर सूर्य की किरणें नाच रही हैं, और दूर गिर्जा के क्रास पर एक कौआ काँव-काँव कर रहा है। मेरी भूख प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है। लेकिन मुझे जीविका की इतनी चिन्ता नहीं। पेट भरने को कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है। कहीं-न-कहीं तुम जैसा दोस्त मिल जाता है, और फिर हम दोनों किसी रेस्तराँ में चले जाते हैं, और खाना खाते हैं। कभी-कभी अपने दोस्तों से रुपये उधार ले लेता हूँ, मगर ये रुपये कभी वापस नहीं करता। कह दो, यह कमीनापन है ! मुझे इसकी परवाह नहीं। भूख ही कमीनापन सिखाती है। पूँजीपति मजदूर की जीविका छीन कर आलीशान महल तैयार करता है, फैक्ट्रियाँ खोलता है, और अपने बाल-बच्चों को शिक्षा दिलाने के लिये योरप भेजता है। क्या यह कमीनापन नहीं ? ताकतवर कमजोर को पराजित करके एक महान साम्राज्य की नींव रखता है। क्या यह कमीनापन नहीं ? शासक पराधीन को कुचल कर, पीस कर शासन करता है, क्या यह नीचता नहीं ? और अगर मैं अपने मालदार दोस्तों से चन्द टके उधार ले लेता हूँ, ताकि अपनी भूखी अँतड़ियों को बहला सकूँ, तो क्या मैं कमीना हो गया ? छोड़ो, यार ! तुम्हारे समाज की

सारा हिन्दुस्तान छान डालो, इतनी सुन्दर, सुडौल और आकर्षक टाँगें नहीं मिलेंगी। मैं कहता हूँ, इन लोगों से रहना-सहना सीखो! इन लोगों से पूछो कि सुन्दर टाँगें किस तरह तैयार होती हैं, सुडौल बाज़ू, उभरी हुई छातियाँ, स्वस्थ शरीर किस तरह बनता है? और फिर यह कमान की-सी लचक, यह सुन्दर, जवान, खूबसूरत और दिलकश लचक, जो औरत की सुन्दरता की जान होती है, कहाँ से आती है, किस तरह बनती है? शर्माने की कोई बात नहीं। तुम कहोगे, हिन्दुस्तान मुफलिस है, गरीब है, निर्धन है, भूखा है। लेकिन ये ऐक्ट्रेसें तो गरीब नहीं। ये तो हजारों रुपये प्रतिमास कमाती हैं। लेकिन सुन्दरता का अनुभव किसको है? यहाँ तो औरत को गठरी बनने पर मजबूर किया जाता है! और अगर औरत गठरी बन गई, तो समझो कि सौन्दर्य की मूर्ति तैयार हो गई! यहाँ तो सुन्दर शरीर पर खोल चढ़ाये जाते हैं कि कहीं इन टाँगों में जिन्दगी न आ जाय और ये टेढ़ी-सीधी टाँगें चलने-फिरने न लगें। मरने और जीने के अन्दाज इन पश्चिमीय लोगों से सीखो, भाई! अभी हम बहुत पीछे हैं, बहुत पीछे।

अरे, कर रहा था बात प्रतिमा की कि जिक्र आ गया ब्राड्वे गर्ल्स की टाँगों का। अगर इतने ही बेबस और मजबूर हो रहे हो, तो कुछ दिनों के लिये बम्बई आ जाओ। हिन्दुस्तान के सारे मशहूर ऐक्टरों और ऐक्ट्रेसों से तुम्हारा परिचय करा दूँगा। ये लोग अपनी प्रसिद्धि के उतने ही भूखे हैं, जितना तुम इन्हें देखने को तरसते हो। आखिर ये लोग भी तो इनसान हैं। मैं यों ही ऐक्ट्रेसों के झमेले में पड़ गया। कर रहा था जिक्र अपना। बीच में बेचारी ऐक्ट्रेसें आ गईं। तुमने मेरे घर का पता पूछा है। मैं तुम्हें क्या बताऊँ कि मैं कहाँ रहता हूँ? पहले मैं शिवाजी पार्क में रहता था। वहाँ से क्यों चला आया? लो, इसका कारण भी सुनो। मैं एक दोस्त के पास ठहरा हुआ था। आज-कल किसी को दोस्त बनाना उतना ही आसा है, जितना कि दुश्मन। मेरा दोस्त, जिसका

नाम तुम 'आर' रख सकते हो, एक बड़ा ही पहलवान-टाइप का आदमी है। शरीर देखो, तो जी फड़क उठे। कसरत का बहुत शौकीन। वह दिन-रात कसरत करता था। हर समय शरीर को भी स्वस्थ और भारी-भरकम बनाने के स्वप्न देखता था। वास्तव में उसका स्वप्न अब यथार्थ बन चुका था। बेचारे में एक कमजोरी थी। वह यह कि स्त्री को देख कर घबरा जाता था। इसीलिए वह स्त्रियों की ओर बिलकुल नहीं देखता था, मेरा मतलब है, जवान औरतों की तरफ। अगर मैं कभी किसी युवती की तरफ निगाह करता, तो वह इस बात को बुरा समझता। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि मेरे मित्र का दृष्टिकोण सही है। आखिर यों ही अपने दिल और दिमाग को परेशान करने से क्या लाभ? हर वक्त स्त्री के बारे में सोचने से क्या हासिल हो सकता है? अच्छा यही है कि कसरत की जाय, डंड पेले जायँ, मन-मन दो-दो मन के पत्थर हर रोज उठाये जायँ। और जब आदमी पत्थर उठा-उठा कर थक जाय, तो समुद्र के किनारे सैर करने चला जाय, और समुद्र की असंख्य लहरों को गिनता रहे। हर तरफ लहरें ही लहरें, या पानी ही पानी—दूर, नजरों से दूर, जहाँ समुद्र और आकाश एक-दूसरे से गले मिलते हैं, सूर्य अपनी किरणों को समेट कर समुद्र को चूमता है, और फिर गहरे नीले पानी में डूब जाता है। चारों ओर लाली ही लाली फैल जाती है। आकाश पर भागते हुये बादल सन्ध्या की लाली से चमक उठते हैं। और ठंडी, ताजी, जीवित वायु बालों को चूमती हुई आगे बढ़ जाती है। नारियल के पेड़ प्यार-भरी नजरों से झाँकते हैं, और उनकी सोंधी-सोंधी सुगन्ध वायु में घुलमिल जाती है। इस दृश्य को छोड़ कर किसी औरत के पीछे भागना मूर्खता है, सरासर मूर्खता है।

अगर तुम मेरे दोस्त को देखो, तो यही कहोगे कि यह कितना सुन्दर, सुडौल, तराशी हुई यूनानी प्रतिमा-सा है। उसकी आँखों में हरी-भरी घास की नीलाहट है, और उसके गाल पके हुये सेब की तरह सुर्ख हैं।

अगर तुम उसके पास बैठो, तो एक अजीब स्वस्थ सुगन्ध उसके शरीर से निकलती पाओगे, जो सिर्फ शुद्ध घी खाने से, दूध पीने से या सुर्ख टमाटरों के इस्तेमाल से, या औरत की ओर न देखने से पैदा होती है। स्त्रियाँ अकसर मेरे मित्र की ओर देखती हैं। उनकी निगाहों में आरज़ू होती है, उसके शरीर को छूने की इच्छा होती है, बस यह देखने के लिये कि इस प्रतिमा में क्या है, इसकी बाँहें क्यों इतनी सुडौल हैं, इसकी चाल में क्यों एक जिन्दगी है, इसकी निगाहों में क्यों एक चमक है! लेकिन मेरा मित्र स्त्रियों, सुन्दर और युवती स्त्रियों, की ओर नहीं देखता। अकसर मैं उसे लेक्चर दिया करता हूँ कि 'भई, औरत से घबराने की जरूरत नहीं! आखिर औरत बनी किस लिये है? औरत से इतनी दूर रहने से क्या फायदा? आखिर प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य एक सुन्दर शरीर बनाना ही तो नहीं है? मेरी ओर देखो! मैं चाहता हूँ कि मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहे, और मैं स्वस्थ रहने के लिये थोड़ी-बहुत कसरत भी कर लेता हूँ। लेकिन मैं पहलवान बनना नहीं चाहता। मैं जीवन में कसरत या व्यायाम के अतिरिक्त कुछ और भी करना चाहता हूँ। जैसे मैं उस लड़की को, जो अकसर बालकनी में खड़ी रहती है, बहुत करीब से देखना चाहता हूँ। तुमने नहीं देखा उसे? देखा होगा, और जरूर देखा होगा। मैंने तुम्हें अकसर देखा है कि तुम चाँद की रुपहली चाँदनी से प्रभावित या प्रेरित हो कर बाग में चले जाते हो, और हरी-हरी घास पर एक सफेद चादर बिछा कर लेट जाते हो, और अपने शरीर को चाँद की शीतल किरणों के हवाले कर देते हो. और देर तक उन रुपहली, बर्फीली किरणों में नहाते रहते हो। भला यह क्यों? तुमने उस लड़की की ओर नहीं देखा। वह भी तो चाँद ही का एक टुकड़ा है। उसके शरीर से भी किरणें फूटती हैं। पर ये किरणें विचित्र-सी होती हैं, मीठी, हलकी, नर्म, शीतल और गर्म भी? नींद आ जाती है इन किरणों से। मुझे भी नहाने दो इन किरणों में। तुमने कभी चाँद को छूने की तमन्ना

की है? जरूर की होगी। चाँद इस सृष्टि में प्रसन्नता का स्रोत है। मैं उस लड़की को अत्यन्त निकट से देखना चाहता हूँ। मैं उसे डराना नहीं चाहता। मैं सिर्फ यह चाहता हूँ कि उसे मेरी उपस्थिति का ज्ञान हो जाय। उसे यह मालूम हो जाय कि यह व्यक्ति जो प्रतिदिन उसकी बालकनी के नीचे से गुजरता है, उसे कितना पसन्द करता है। यह कोई बुरी बात नहीं है, बल्कि एक अत्यन्त शुद्ध, पवित्र और सच्ची इच्छा है। आखिर उस लम्बे बालों वाली लड़की से तुम्हें क्यों नफरत है? क्या हुआ यदि उसकी निगाहों ने तुम्हारी प्रशंसा की? क्या हुआ, यदि एक दिन वह तुम्हारे कमरे में अचानक आ गई, और उसने अपने आपको तुम्हारे हवाले करना चाहा? लेकिन तुमने उसका अपमान किया, और उसे घर से बाहर निकाल दिया। यह कहाँ की सभ्यता है? तुम समझते हो कि तुमने एक नेक काम किया और एक लड़की का सतीत्व नष्ट होने से बचाया। लेकिन तुमने उसके प्रेम का स्रोत सदैव के लिये उखाड़ दिया, प्रेम के अंकुर को फूटने से पहिले ही पैरों से रौंद डाला। जानते हो, आज-कल वह क्यों उदास रहती है? तुमने उसके गालों की जर्दी को नहीं देखा। तुमने उसकी निगाहों की प्यास और भूख का कभी अनुमान नहीं किया। तुम कसरत करके और घी पीकर सो गये और वह बेचारी मुहब्बत की झुलसती हुई आग में जल-भुन कर सूखती चली गई। मुझे ऐसी सभ्यता या शराफत पसन्द नहीं। मैं जानता हूँ कि जब तुम्हें औरत की याद सताती है, तब तुम क्या करते हो। उस वक्त तुम क्यों ठण्डा पानी पीते हो, और क्यों ठण्डे पानी से बार-बार नहाते हो? पर आखिर यह कब तक? यदि दुनिया के सारे इनसान ठण्डे पानी से नहाना शुरू कर दे, तो दुनिया उस चीज से वंचित हो जाय, जिसे प्रेम या मुहब्बत कहते हैं। प्रेम ही जीवन की धुरी है। इसके बिना जीवन नीरस है, निर्जीव है।'

हाँ, उस दिन की बात है कि एक नौजवान लड़की मेरे कमरे में

आ गई। मेरे दोस्त ने उस लड़की को देख लिया। उसने इस बात को नापसन्द किया। वह यह बात सहन न कर सकता था कि कोई लड़की उसके घर की तरफ रुख करे। दोस्त ने उस लड़की को गालियाँ दीं, और कहा कि वह वेश्या है, एक बदमाश औरत है। लड़की बेचारी देखती-की-देखती रह गई। इसमें सन्देह नहीं कि उसने नया धन्धा शुरू किया था; और वह उन लोगों से आशनाई करना चाहती थी, जो कम-से कम उसे अच्छे लगें। इससे पहले वह एक लड़के से प्रेम कर चुकी थी, और अब वह मेरी ओर आकर्षित हो रही थी।

मेरे दोस्त ने लड़की को अपमानित करके घर से बाहर निकाल दिया, और देर तक इस घटना पर विचार करता रहा। यदि मेरा मित्र अनपढ़ होता, तो शायद मैं उसे माफ कर देता; लेकिन जो आदमी पढ़ा-लिखा हो, और फिर एक वेश्या को गाली दे कि क्यों वह वेश्या है, वह क्यों अपने शरीर को बेंचती है, तो साफ ज़ाहिर है कि वह व्यक्ति की बुनियादी जीवन-समस्याओं से परिचित नहीं। वह उन्हें बिलकुल नहीं समझता; और अगर समझता भ है, तो अपने सिद्धान्तों के लिये एक ऐसी लड़की पर हमला करता है, जो अकेली है, जिसका कोई सहायक नहीं, जिसके पेशे का जिम्मेदार हमारा समाज है, राज्य है, वर्त्तमान साम्राज्य है। तुम्हीं बताओ ऐसे आदमी को क्या सजा मिलनी चाहिये ? वेश्याओं की समस्या उन्हें गाली देने से हल न होगी, बल्कि स्त्रियों को शिक्षा देने से, स्त्रियों की भूख मिटाने से, स्त्रियों के लिये काम जुटाने से, स्त्रियों को आजादी देने से, स्त्रियों की आर्थिक समस्याओं को हल करने से। जब तक यह काम सरकार न करेगी, वेश्यायें बनी ही रहेंगी।

आज के दिन तक मैं यह घटना भूल नहीं सका। मैं उसको कभी भूल नहीं सकता। ऐसा मालूम होता है कि उस दिन उस लड़की का अपमान नहीं हुआ था, बल्कि मेरी बेइज्जती हुई थी। मेरी बहन की

बेइज्जती की गई थी। उस दिन मेरे दोस्त ने उस लड़की की बेइज्जती करके यह जाहिर कर दिया कि मुझे भी उस घर में नहीं रहना चाहिये। हो सकता है कि मैं भी इसी तरह इस घर से निकाला जाऊँ। उस लड़की ने जिस क्रुद्ध दृष्टि से मेरे मित्र की ओर से देखा था, उससे साफ़ प्रकट था कि यदि वह पुरुष होती, तो उसे थप्पड़ मार-मार कर उसके होश ठिकाने लगा देती। वह कौन व्यक्ति होगा, जो अच्छा जीवन नहीं बिताना चाहता? आखिर उस लड़की को क्या पड़ी थी कि वह अपना शरीर राहचलतों के हाथ बेचती फिरे? क्या उसके हृदय के किसी कोने में यह तमन्ना न थी कि उसे एक ऐसा पति मिले, जो सुन्दर हो, सज्जन हो, अच्छे पैसे कमाता हो और उससे प्रेम करता हो? और यदि जीवन में ये चीजें न हों और भूख तथा उपवासों से लाचार होकर अपने आपको बेचना पड़े तो इसमें उस लड़की का क्या दोष?

वह उदास शाम मैं कभी नहीं भूल सकता। वह गालियाँ अभी तक मेरे कानों में गूँज रही हैं। ऐसा लगता है कि हर गाली मेरे सीने में एक घाव पैदा कर गई है। उस दिन के बाद मैं अपने दोस्त के घर से चला आया।

आज-कल माहिम में रहता हूँ। यह जगह मुझे बहुत पसन्द है। इस जगह ने मेरी उदासी को और भी बढ़ा दिया है। मेरे घर के सामने नारियल के पेड़ खड़े हैं। ये पेड़ हवा में झूमते हैं, और समुद्र की हवा नारियल के पत्तों से अठखेलियाँ करती हुई आगे निकल जाती है। आकाश मेघाच्छादित रहता है, और कभी-कभी खूब जोर की बारिश होती है। मैं अक्सर बालकनी में खड़ा रहता हूँ, और एक भटके हुए मनुष्य की भाँति इधर-उधर देखता रहता हूँ। लोग मेरी ओर देखते हैं। वे जरूर सोचते होंगे कि यह आदमी यहाँ क्यों खड़ा रहता है। क्या यह पागल है? क्या इसका दिमाग ठीक नहीं? और मैं उनकी ओर देखता हूँ, मानो उनकी बात को अच्छी तरह समझता हूँ, मानो मैं उनके मन

की निर्जनता, उनकी बेबसी, उनकी लाचारी से भली-भाँति परिचित हूँ। पर मैंने उन्हें बताने की कभी चेष्टा नहीं की।

मेरे मकान के सामने एक ऐक्टर का मकान है। मैंने अक्सर एक सुन्दर लड़की को उसके कमरों में घूमते देखा है। सुना है कि यह लड़की 'एक्स्ट्रा' का कार्य करती थी। फिर इस ऐक्टर ने यह लड़की पसन्द कर ली और वह घर की चारदीवारी में बन्द कर दी गई है।

बम्बई में आम तौर पर लोग ऐक्ट्रेसों से शादी कर लेते हैं, और जब शादी कर लेते हैं, तब अपनी पत्नियों को घर की चारदीवारी में बन्द कर देते हैं। इनमें से अक्सर लड़कियाँ पहले स्वतन्त्र जीवन बिता चुकी होती हैं। वहाँ वे पहले खुल्लम-खुल्ला पुरुष से मिल सकती थीं, लेकिन अब वे परपुरुष की ओर आँख उठा कर देख भी नहीं सकतीं, अर्थात् एक सीमा से गुजर कर दूसरी सीमा तक पहुँच जाती हैं। परिणाम यह होता है कि विवशता, निराशा के साथ एक डर सदैव उनके इर्द-गिर्द चक्कर लगाता रहता है कि उनके पति उन्हें किसी परपुरुष के साथ बातें करते न देख लें कि उनका फिर वही हाल हो, जिससे ऊब कर उन्होंने यह जीवन स्वीकार किया था। दाम्पत्य जीवन के कुछ ही वर्ष उन्हें बता देते हैं कि इस जीवन में भी उतनी ही उदासी है, उतना ही जहर है, उतनी ही कटुता है, जितना उनके पहले जीवन में थी। कभी-कभी उस ऐक्टर की पत्नी मेरी ओर देखती है। आँखों में बेपनाह उदासी है, चेहरे पर भय के चिह्न हैं, और जिन्दगी में हसरत और गम के सिवा और कुछ नजर नहीं आता। हवा जोर-जोर से चलती है, नारियल के पत्ते हवा में नाचते हैं, शोर मचाते हैं, एक अस्पष्ट-सा गीत सुनाई पड़ता है, खिड़की के परदे हिलते हैं, आँखें चमकती हैं—क्षण भर के लिये, और फिर अँधकार छा जाता है।

मेरे मकान के नीचे अक्सर गन्दगी का ढेर लगा रहता है। कहते हैं, बम्बई बहुत ही साफ जगह है। अगर कभी माहिम आओ, तो तुम्हें

मालूम हो कि माहिम लाहौर की भाँति ही गन्दा, सड़ा शहर है। मकान की बाँई ओर धोबी-घाट है, जहाँ दिन भर धोबी कपड़े धोते रहते हैं। रस्सियों पर तरह-तरह के फ्राक लटके हुये नजर आते हैं। वह लाल फराक देख लो। किसी जवान लड़की का होगा। और वह लटका हुआ लम्बा फराक किसी बुढ़िया का होगा। रंग-बिरंग की साड़ियाँ, पाजामे, धोतियाँ, पेटीकोट, चादरें जगह-जगह लटकती हुई दिखाई पड़ेंगी। गली के पास ही एक नारियल का पेड़ गिरा हुआ है। ज़रा बच कर चलना, कहीं ठोकर न लगे। चन्द दिन हुए कि बहुत तेज हवा चली थी, और नारियल का पेड़ गिर गया था। बालकनी में खड़े होने पर तुम्हें एक छोटा-सा मन्दिर दिखाई पड़ेगा। वास्तव में वह मन्दिर नहीं है, सिर्फ एक टीन की छत है, जिसके नीचे एक मूर्ति रख दी गई है। बम्बई में बहुत कम मन्दिर हैं, बहुत कम गुरुद्वारे हैं, बहुत कम मस्जिदें हैं। हाँ, गिर्जे अधिक दिखाई पड़ते हैं। तो, हाँ, शायद माहिम के हिन्दुओं को मन्दिरों की जरूरत महसूस हुई होगी। बेचारों ने इसी टीन की छत के नीचे मूर्ति स्थापित कर दी। स्त्रियाँ सुबह शाम आती हैं, और पत्थर की पूजा करती हैं। चन्द दिन हुए नारियल का पेड़ इस पत्थर पर गिरा था—मेरा मतलब है इस खुदा पर, देवता पर। पेड़ भारी था, देवता कुछ न कर सका। बीसवीं सदी के देवता भी बेजान हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों को खाने-पीने के लिये कुछ-न-कुछ मिल जाता है, नहीं तो इसी पर एक भयंकर दंगा शुरू-हो-जाता। हिन्दू कह सकते कि मुसलमानों ने जान-बूझ कर पेड़ गिराया है ताकि हिन्दुओं के परमात्मा का अपमान हो। आज-कल इन प्रश्नों को कौन पूछता है ? जब पेट भरा हुआ हो, तो परमात्मा याद नहीं आता ? धर्म बेचारा...।

मेरा फ्लैट दूसरे तल्ले पर है। इसलिये जब कभी बालकनी में खड़ा होता हूँ, तो इर्द-गिर्द के मकानों को अच्छी तरह देख लेता हूँ। मेरे फ्लैट की दाहिं ओर एक गुजराती रहता है। गुजराती बेचारा बूढ़ा

है, लेकिन उसकी पत्नी जवान है। यदि सुन्दर होती, तो मैं जरूर उससे रोमांस लड़ाता। मेरे सुन्दरता-सम्बन्धी स्टैंडर्ड की तारीफ करो कि मैं यों ही हर लड़की से प्रेम नहीं कर सकता। बेचारी बहुत ही कुरूप है। काश, उसके दाँत बाहर निकले हुये न होते, तो शायद मुझे पसन्द आ जाती! वह अक्सर फूलों का एक गुच्छा अपने जूड़े में बाँधती है। यहाँ की स्त्रियों को फूलों से बहुत प्रेम है। मालूम होता है, औरत जितनी ज्यादा कुरूप होती है, उतना ही वह फूलों से अधिक प्रेम करती है। यहाँ तुम हर लड़की, हर स्त्री को फूलों से लदी हुई पाओगे। लेकिन फिर भी सौन्दर्य का अभाव है। सुन्दर स्त्री बड़ी मुश्किल से दिखाई पड़ती है। और फूल लगा कर यहाँ की औरतें और भी कुरूप दिखाई पड़ती हैं। सुन्दरता में तो वृद्धि होती नहीं, असुन्दरता में वृद्धि हो जाती है। जो हो, उस गुजरातिन को फूलों से प्रेम है। बूढ़ा गुजराती अक्सर बाहर रहता है। स्त्री दिन भर चारपाई पर लेटी रहती है। आज-कल गुजराती ने एक नौकर रख लिया है। आज मैंने नौकर को गुजरातिन के होंठों को चूमते हुये देखा। फिर दरवाजे की चटकनी बन्द कर दी गई। कुछ देर तक ठहाकों की आवाज आती रही। जब शाम के वक्त गुजरातिन बाहर निकली, तब उसके होंठों पर एक मुस्कराहट थी, आँखों में चमक थी, जिस्म से नारियल की सोंधी-सोंधी खुशबू आ रही थी, आँखों में उल्लास के लाखों फूल खिले हुये थे। लेकिन यह खुशी, यह उल्लास जल्द ही मिट गये। बूढ़े गुजराती को इस प्रेम का पता चल गया, और उसने नौकर को निकाल दिया।

तब फिर गुजरातिन के होंठ सूखे दिखाई देने लगे। उसकी आँखों से निराशा टपकने लगी थी, उसकी मुस्कराहट में उदासी आ गई, उसकी बातों में दुख की झलक रहने लगी। और अब वह अकसर बिस्तर पर औंधे-मुंह लेटी रहती है, और उसकी बेडौल पिंडलियाँ हिलती रहती हैं।

तुम कहोगे कि मैं फिर औरत का किस्सा ले बैठा। सच कहूँ, बुरा तो न मानोगे? मैं हर तरह यह कोशिश करता हूँ कि औरत के बारे में कुछ न सोचूँ, औरत के विषय में कुछ न लिखूं; लेकिन हर बार जब लिखने बैठता हूँ, तब औरत सामने आ जाती है। ऐसा मालूम होता है कि शायद औरत के बिना बात फीकी रहेगी। अच्छा, आओ, तुम्हें औरत की दुनिया से दूर ले चलता हूँ। मैं अपने दोस्तों का तुमसे परिचय कराता हूँ। जिस जगह मैं रहता हूँ, वह फ्लैट सिर्फ एक आदमी के रहने के लिये है, लेकिन आज-कल इस फ्लैट में सात आदमी रहते हैं।

इन सब से मिलो। ये हैं मिस्टर चटरजी। ये बंगाल के एक दूर के गाँव से चल कर बम्बई आये हैं। वही जीविका की खोज! यह कोई नई बात नहीं। अंगरेज इतनी दूर से चल कर यहाँ आये हैं। और अगर एक बंगाली युवक इतनी दूर से बम्बई में अपनी किस्मत आजमाने आया है, तो इसमें क्या बुराई है? चटरजी का रंग काला है, और जब कभी वह काला सूट पहिनता है, और सिगरेट सुलगा कर धुआँ मुंह से निकालता है, तो बिलकुल रेल के इंजन की तरह दिखाई देता है। आम बंगालियों की भाँति दुबला-पतला है, और ऐसा लगता है, मानो वह क्षय का रोगी हो। उसके गाल पिचके हुये हैं, चेहरे पर हर समय उदासी-सी छाई रहती है। बाजू लम्बे और पतले, टाँगें सूखी हुई, आँखें बड़ी-बड़ी, काली, लेकिन जैसे ज्योतिहीन, बेजान, खोई-खोई-सी, किसी चीज की खोज करती-सी, एक भावी आशा पर जीवित—वह समय, जब भूख और बेकारी मिट जायगी, जब संसार पर मानवता का राज्य होगा, जब एक नवीन जीवन का प्रभात होगा!

खैर, चटरजी बहुत होशियार आदमी है। हर वक्त कुछ-न-कुछ करता रहता है। मैंने कभी उसे बेकार नहीं देखा। मगर हाल यह है कि आज तक उसे कोई काम नहीं मिला। वह बम्बई में इसलिये आया

था कि सफल कैमरामैन बन सके। उसका भाई फोटोग्राफर था, और उसने भी फोटोग्राफी का काम भाई की दूकान पर सीखा था। वह उर्दू अच्छी तरह बोल सकता है। हिन्दी भी जानता है। टूटी-फूटी इंगलिश भी बोल लेता है। उसके पास यूनिवर्सिटी की कोई डिग्री नहीं, लेकिन एक साधारण ग्रेजुयेट से अच्छी योग्यता रखता है। एक बार उसे एक फिल्म में काम मिला था, लेकिन चन्द दिनों के बाद उसे निकाल दिया गया था। अब वह डायरेक्टर बनना चाहता है, और उसके बाद प्रोड्यूसर। वह कहता है कि एक दिन वह प्रोड्यूसर बन कर दिखायेगा। उसके पास खाने के लिये पैसे नहीं होते। कभी-कभी वह मुझसे पैसे माँग लेता है। आज-कल वह एक वक्त खाना खाता है, इसलिये उसका स्वास्थ्य दिन-प्रति-दिन गिर रहा है। पिछले हफ्ते उसे जुकाम हो गया, और साथ-ही-साथ बुखार भी। पहले ही कौन बहुत ताकतवर था, जुकाम और बुखार ने उसे और कमजोर कर दिया। दो दिन तक उसने कुछ नहीं खाया। उसकी अप्रतिभ आँखें अन्दर धँस चुकी हैं, उसका चेहरा और काला पड़ गया है, और जब वह चलता है, तो उसकी टाँगें काँपती हैं। बातें करते समय उसकी साँसें फूल जाती हैं। लेकिन उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। वह अब भी कहता है कि एक दिन प्रोड्यूसर जरूर बनेगा, एक दिन फिल्म जरूर डायरेक्ट करेगा। क्या हुआ यदि उसके पास पैसा नहीं? क्या हुआ यदि वह दिन में एक बार खाना खाता है? वह उपवास करेगा, जिन्दगी से लड़ेगा, फिल्म-जगत के प्रत्येक व्यक्ति से लड़ेगा। वह अच्छी तरह जानता है कि लोग किस तरह प्रोड्यूसर बन जाते हैं। बम्बई में यदि कोई प्रोड्यूसर बनना चाहे, तो उसे चाहिये कि वह किसी सुन्दर स्त्री को फाँस ले, या वह स्वयं इतना सुन्दर हो कि कोई स्त्री उसे फाँस ले। लेकिन चटरजी न सुन्दर है, न जवान। कोई प्रतिभाशाली, समझदार, सुन्दर स्त्री उससे प्रेम नहीं कर सकती। परन्तु वह अपनी धुन का पक्का है। उसका इरादा चट्टान की तरह अटल है।

पर कभी-कभी जब वह बम्बई के स्टुडियोज़ के चक्कर लगा-लगा कर थक जाता है, तो कहता है कि वह इस जीवन से उकता गया है। वह कब तक कोशिश करता रहे, कब तक लोगों की झुड़कियाँ सुने? उसे लोगों से नफरत हो गई है, स्वयं अपने जीवन से घृणा हो गई है। वह आत्म-हत्या कर लेगा। और जब कभी वह कुर्सी पर बैठ कर आत्म-हत्या के बारे में सोचता है, तो मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। फिर वह एक अजीब अन्दाज से मुस्कराता है। ओफ! उन सूखे होठों की वह निर्जीव मुस्कराहट! यह मुस्कराहट नहीं, खून है। लगातार उपवासों की एक तस्वीर है, जो जिन्दा हो कर उसके होठों पर नाचती है। सृष्टि का प्रत्येक कण मौन है। बम्बई का प्रत्येक सेठ जीवित है। बम्बई के प्रत्येक होटल में बिजली के लट्टू जगमगाते हैं। बम्बई के शराबखानों में तिल धरने को जगह नहीं। नाच होते हैं। निगाहों में प्यास और हविस की बिजली कौंधती है। मेरीन ड्राइव पर लाखों लट्टुओं की रोशनी फैलती है, और चारों ओर फैलती जाती है। समुद्र की लहरें बढ़ती हैं, शोर मचाती हैं, और पीछे हट जाती हैं। ट्रामों, बसों और मोटरों की खड़खड़ाहट मंद नहीं पड़ती। लेकिन यह व्यक्ति इस छोटे-से, इस आदमियों से भरे कमरे में बैठ कर क्यों उदास दिखाई देता है? इसकी आँखों में क्यों मरने की तमन्ना है? आखिर इस अन्धी कोशिश का मकसद? आज-कल चटरजी खाँसता है। वह हलकी-हलकी खाँसी! भगवान बचाये उस खाँसी से! क्या उसे क्षय-रोग हो गया है? क्या वह जिन्दगी में कभी डायरेक्टर न बन सकेगा? क्या उसकी इच्छा कभी पूर्ण न होगी? मेरे दोस्त अकसर चटरजी को चिढ़ाते हैं, उस पर व्यंग्य-बाण छोड़ते हैं कि वह कब डायरेक्टर बनेगा, वह कब प्रोड्यूसर बनेगा? फिर सब उसे गालियाँ देते हैं, घर से निकालने की धमकी देते हैं, केवल इसलिये कि उसका कोई वारिस नहीं, केवल इसलिये कि उसके पास पैसे नहीं, और वह फ्लैट का किराया नहीं चुका सकता, और अकसर दूसरों

का मुहताज रहता है। सिर्फ इसलिये कि वह कमजोर और दुबला-पतला-सा आदमी है, और बीमार है। वह उन सब की गालियाँ सुनता है, और चुप रहता है। वह नहीं जानता कि यदि वह इस फ्लैट से निकाल दिया गया, तो कहाँ और किधर जायगा? वह किस जगह रात बिता सकेगा? गुस्से में आकर खत लिखने लगता है। किसको? शायद अपने बाप को, जिसने उसे पैदा किया, शायद अपनी माँ को, जो कब की मर चुकी है, या अपने भाई को, जो बंगाल के एक दूर के गाँव में जीवन के दिन काट रहा है। खत लिखो, लिखे जाओ, दुनिया के मालिकों को खत लिखो! एटली को खत लिखो, ट्रूमैन को खत लिखो कि वह तुम्हें रुपये भेज दें। स्टेलिन को खत लिखो, जिसने हिन्दुस्तान की आजादी के बारे में कभी कुछ नहीं कहा! संसार के हर महापुरुष को खत लिखो कि वह तुम्हें इस जीवन से मुक्ति दिलाये! तुम दुनिया के हर बड़े आदमी से पूछो कि तुम, चटरजी, क्यों इस दुनिया में अकेले हो, क्यों भूखे रहते हो, क्यों उपवास करते हो? तुम्हें क्यों सोने के लिये जगह नहीं मिलती? लेकिन, ईश्वर के लिये, तुम चुप न रहो! मित्रों की गालियाँ इस खामोशी से न सुनो! तुम क्यों इस अपमान को सहन करते हो? यह अपमान, यह बेइज्जती, यह जिल्लत मुझे बुरी लगती है, बुरी ही नहीं बल्कि ऐसा लगता है कि मेरा गला घोंटा जा रहा है! मैं यह मौन सहन नहीं कर सकता, और कभी मैं सोचता हूँ कि मैं इन सब लोगों को बालकनी से नीचे पटक दूँ। दुनिया में हर आदमी कमीना है, नीच है, जलील है।

संसार में एक ऐसी व्यवस्था की जरूरत है...ठहरो, मैं साम्यवादी नहीं बनना चाहता! मैं फैसिज्म का हामी नहीं! मैं किसी 'इज्म' या 'वाद' का प्रचार नहीं करना चाहता! मैं कहानी नहीं लिख रहा हूँ। मैं कहानी लिखना जानता ही नहीं। मेरी कहानी में न प्लाट होता है, न मैं वातावरण तैयार करता हूँ, न चरित्र-चित्रण के चमत्कार दिखाता हूँ, न

रंगीन या सरस भाषा लिखता हूँ। मैं साहित्य की सेवा नहीं करना चाहता। मैं किसी की सेवा नहीं करना चाहता। मुझे "सेवा' शब्द से नफरत है। मैं गलत भाषा लिखता हूँ, गलत मुहावरे लिखता हूँ। स्त्रीलिंग, पुलिंग का भेद नहीं जानता। मैं नई-नई उपमायें नहीं लिखता। मैं आकर्षक शैली का मालिक नहीं। मैं मोपासाँ और टॉल्सटाय की तरह बड़ा लेखक नहीं बनना चाहता, मैं ख्याति का कायल नहीं। मेरे पास इस समय चार आने हैं! मैं सिर्फ चार आने में जो-कुछ कहूँगा, साफ-साफ कहूँगा। मेरे विचार एक व्यक्ति, एक जाति या एक राष्ट्र के नहीं, बल्कि समस्त मानवता के विचार हैं। मैं मानवता का कायल हूँ, उसका उपासक हूँ। और इसीलिये पूछता हूँ कि इस दुनिया में इतना जुल्म क्यों है, इतनी बेकारी क्यों है, इतना अन्याय क्यों है, और मनुष्य के जीवन को, उसकी आत्मा को एक खिलौना क्यों बना रखा गया है? इसका जवाब तुम क्या दोगे? इनसानी खुदाओं और नेताओं के पास इसका कोई जवाब नहीं? खैर।

इनसे मिलो! इनका नाम हरिश्चन्द है। यू० पी० इनका प्रान्त है। लड़ाई शुरू होने से पहले हरिश्चन्द अपने मालदार चाचा के साथ सट्टा खेलता था। लेकिन जैसे ही युद्ध आरम्भ हुआ, इसका चाचा सट्टे में सब-कुछ हार गया, और बेचारे हरिश्चन्द को नौकरी की खोज में बम्बई आना पड़ा। कुछ समय तक वह डिपो में काम करता रहा, लेकिन डिपो की नौकरी पसन्द न आई। नौकरी छोड़ दी। किसी ने कहा, 'तुम ऐक्टर बन सकते हो!' बस, फिर क्या था, ऐक्टर बनने का जुनून सिर पर सवार हो गया। बम्बई की आधी आबादी ऐक्टर बनने की तमन्ना करते-करते मर जाती है। हरी को भी यही सनक सवार है। काश, उसे वास्तविकता का ज्ञान करा दिया जाता! पर इनसान अपने आप को धोखा देना चाहता है। वह वास्तविकता का कभी सामना नहीं करना चाहता। आज-कल हरी दिन में दस-बीस बार कंघी करता है। आईना

हर वक्त उसके सामने रहता है। उसके शरीर की बनावट में एक अजीब जनानेपन की-सी झलक है। ऐसा मालूम होता है, मानो वह मर्द कम है, और‍त ज्यादा। वह बाल विचित्र ढंग से बनाता है। गुसलखाने में दो-दो घंटे लगा देता है। मालूम नहीं वह इतना समय गुसल में क्यों लगाता है। और जब नहा कर बाहर निकलता है, तो क्रीम और पाउडर पर मुसीबत आती है। चेहरे पर क्रीम मलता है, और मलता रहता है। और फिर पंखे से हवा करता है, ताकि चेहरे की खाल के प्रत्येक रोम-कूप में क्रीम जज्ब हो जाय। लेकिन क्रीम के इस लगातार इस्तेमाल से चेहरे के रंग में कोई फर्क नहीं आता। हरी नित्य दूनी धुलाई पर कपड़े धुलवाता है, और रुपये घर से मँगा कर गुजारा करता है। लेकिन कब तक? वह फिर सट्टा खेलना चाहता है। वह कहता है कि सरकारी नौकरी करके कोई आदमी अमीर नहीं बन सकता। वह एक अच्छे घर में रहना चाहता है। वह रेडियो खरीदना चाहता है। वह कार रखना चाहता है। बताओ, इन बातों में कौन-सी बुरी बात है। हर समझदार आदमी इन्हीं बातो की इच्छा करेगा। हरिश्चन्द्र जानता है कि डिपो की नौकरी करके वह ये चीजें प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये वह ऐक्टर बनना चाहता है, क्योंकि आज-कल एक ऐक्टर हजारों रुपये कमाता है। वह सट्टा खेलना चाहता है, क्योंकि सट्टा खेलने से ज्यादा अमीर बन जायगा या फिर भिखारी। स्पष्ट है कि वह जिन्दगी से जुआ खेलना चाहता है। जिस परिस्थिति और जिस वातावरण में वह रहता है, उस वातावरण में उसे रत्ती भर खुशी नसीब नहीं होती। दिन-प्रति-दिन उसका वजन कम हो रहा है, सिर के बाल गिर रहे हैं, आँखों में निराशा के चिन्ह प्रकट हो रहे हैं। वह कुछ थका-थका-सा दिखाई पड़ता है। आज हरी टॉनिक खरीद लाया है। वह उसे नित्य इस्तेमाल करेगा, और जीवन-संघर्ष जारी रखेगा। दवाइयों के इस्तेमाल से मनुष्य कब तक जीवित रह सकता है, आखिर कब तक? जिस होटल में वह खाता है,

वहाँ के भोजन में पोषक तत्वों का नाम तक नहीं। साफ प्रकट है कि वह इन लगातार मुसीबतों का मुकाबला न कर सकेगा, भावी विपत्तियों को जीत न सकेगा। मैंने उससे कई बार कहा है कि वह फिर से डिपो की नौकरी कर ले। लेकिन वह हर बार 'नहीं' में जवाब देता है, और शीशे को सामने रखकर मुस्कराता है, और अपने निर्जीव, खुरदरे बालों में कंघी करता है, और जोर-जोर से क्रीम मलता है। और फिर कहता है—"मैं मरना नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि मैं अब अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। शाम के वक्त मेरी टाँगें डगमगाती हैं, सिर चकराता है, और रोज रात को बुखार हो जाता है, और फिर हलकी-हलकी खाँसी की शिकायत भी है मुझे। लेकिन मैं डिपो की नौकरी नहीं कर सकता। वह एक तरह की कैद है। मैं यह कैद नहीं सहन कर सकता। देखो, इस ट्रंक में मेरी बी० ए० की डिगरी रखी है। अगर मैं मर जाऊँ," वह हँसता है मोटे मोटे होठों पर एक खिसियानी सी हँसी ले कर, मानो वह कभी नहीं मरेगा—"तो यह डिगरी लखनऊ यूनिवर्सिटी को वापस भेज न देना। अधिक दिनों इसे अपने पास न रखना। डिगरी का काफी हिस्सा दीमक चाट गये हैं। और बाकी है ही क्या?"

और मैं उसे समझाता हूँ कि, "भाई, नौकरी कर लो!" लेकिन वह बिलकुल नहीं मानता। इस कठिन समय में अजीब-अजीब आदमियों का सामना करना पड़ता है। हर तरफ परेशानी फैली हुई है, और प्रत्येक व्यक्ति एक अच्छा जीवन व्यतीत करने की चिन्ता में है। किन्तु वे लोग, जिनके हाथों में दुनिया के मनुष्यों का भाग्य है, चुपचाप बैठे हुए हैं। वे अपनी ख्याति, अपनी मर्यादा और अपने पद को बनाये रखने के लिये उसी मार्ग पर चलते रहना चाहते हैं, जिस पर चल कर कई सदियों तक उनके पूर्वजों ने राज्य किया था।

और रघुवीर से परिचय कराना तो मैं भूल ही गया। रघुवीर सारे दिन बाहर रहता है, और रात के बारह बजे के करीब घर आता है।

तुम पूछो कि वह क्या करता है, तो मैं इसका जवाब कुछ नहीं दे सकता। इस फ्लैट में जो भी व्यक्ति रहता है, उसके बारे में पूरे विश्वास के साथ यह नहीं कह सकता कि वह क्या काम करता है। दर-असल इस फ्लैट में जो लोग बसते हैं, वे काम नहीं करते। केवल अवतारसिंह अपवाद है। लेकिन इसका जिक्र मैं फिर करूँगा।

रघुवीर को तुमने नहीं देखा। छोटा-सा कद! दूर से देखो, तो एक खिलौने के समान दिखाई देगा। उसके बाल भूरे हैं, रंग गोरा है। उसकी सुन्दरता उसके सुनहरे बालों में निहित है। उसे अच्छे कपड़े पहिनने का बहुत शौक़ है। और जब कभी वह एक अच्छा सूट पहिन कर और नेकटाई लगा कर फ्लैट से बाहर निकलता है, तो गली की सभी जवान लड़कियाँ उसे लोभ और कामना पूर्ण दृष्टि से देखती हैं। और फिर रघुवीर एक मिसरा . . .

'जिन्दगी चाँद-सी औरत के सिवा कुछ भी नहीं!'

रघुवीर कवि है, किन्तु उसकी कोई कविता कभी किसी पत्रिका में नहीं छपी। वह एक सफल ऐक्टर है, लेकिन किसी फिल्म में अब तक उसे कोई पार्ट नहीं मिला। वह एक दिलचस्प प्रेमी है। वह प्रत्येक स्त्री से प्रेम कर सकता है, बल्कि हर लड़की से प्रेम करता है। सड़क पर चलते-फिरते, ट्राम में चढ़ते-उतरते, गली की मोड़ पर, होटल में, सिनेमा में, बाग में, स्टेशन पर हर जगह वह लड़कियों से प्रेम करता है। वह सिर्फ लड़की की ओर देखता है, और फिर आह भरता है, और मिसरा पढ़ता है —

'जिन्दगी चाँद-सी औरत के सिवा कुछ भी नहीं!'

अपने असफल प्रेम की कहानियाँ वह दोस्तों को सुनाता है। जिस लड़की से वह प्रेम करता है, उससे जरूर शादी का वादा करता है। चन्द दिनों के बाद उसके प्रेम का जोश ठण्डा पड़ जाता है, और रघुवीर की निगाहें किसी और लड़की को खोज लेती हैं।

आज-कल उसे एक बंगालिन से प्रेम हो गया है। रघुबीर कहता है कि वह सचमुच प्रेम कर रहा है, लेकिन हमें विश्वास नहीं होता। हम सब हँस पड़ते हैं। हम उसकी गहराई अच्छी तरह जानते हैं। हर रोज वह अपनी प्रेमिका को खत लिखता है, और रात भर जागता रहता है। मैं अकसर रघुबीर के प्रेम की हँसी उड़ाता हूँ, लेकिन वह मुस्करा कर टाल देता है, और किसी बात का जवाब नहीं देता। उसकी हँसी में सचमुच कुछ निराशा-सी आ गई है। क्या सचमुच रघुबीर बंगालिन से प्रेम करता है ? रघुबीर ने बताया था कि शुरू में बंगालिन, जिसका नाम गीता है, उससे विवाह करने के लिये तैयार हो गई थी। गीता एक नर्तकी है। वह एक मशहूर फ़िल्म स्टार के दल में काम करती है। बेचारा रघुबीर भी उसी दल में शामिल हो गया, और उस बंगालिन के लिये सारे हिन्दुस्तान में चक्कर लगाता रहा। लेकिन जब वह दल कलकत्ते पहुँचा, तो गीता ने साफ जवाब दे दिया कि वह उससे शादी नहीं कर सकती। शायद गीता के चाहने वालों ने आग्रह किया होगा कि वह क्यों एक गरीब आवारा लड़के से प्रेम कर रही है। 'हमारी तरफ देखो !' उन्होंने कहा होगा, 'इन गगनचुम्बी कोठियों को देखो ! इन कारों, इन गाड़ियों की तरफ़ देखो ! ये चमकते हुए हीरे, ये सोफे, ये रंगीन परदे, ये नौकर, ये लौंडियाँ, ये दासियाँ और तरह-तरह के खाने ! वह कवि तुम्हें क्या देगा ? केवल कुछ कवितायें, और कुछ नहीं ! अगर तुम उससे शादी करोगी, तो भूखी मर जाओगी। वह स्वयं भूखा है, तुम्हें क्या खिलायेगा ? और फिर वह बंगाली नहीं है, उत्तर भारत की एक घटिया-सी रियासत का रहने वाला है। अपने प्रान्त में रहो, कलकत्ते में रहो ! यहाँ नाचो, गाओ, लोगों को उल्लू बनाओ, और जीवन के दिन हँसी-खुशी......बिताती चली जाओ।'

बेचारा रघुबीर ! जब से वह कलकत्ते से वापस आया है, उसकी हुलिया बिगड़ गई है। औरत की बेवफाई ने उसे बुरी तरह उदास कर

दिया है। अब वह हर रोज शराब पीता है, और रात के बारह बजे घर आता है। पहले वह अपने भविष्य के बारे में बहुत आशापूर्ण था, लेकिन अब उसके हौसले बहुत पस्त पड़ गये हैं। उसके दिल की वीरानी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है।

आज वह रात के बारह बजे घर वापस आया। उसने काफी शराब पी रखी थी, और उसके मुंह से शराब की दुर्गन्ध आ रही थी। उसके भूरे बाल बिखरे हुये थे। उसका पैन्ट मैला और ढीला पड़ गया था। कोट पर धब्बे पड़े हुये थे। आँखें लाल थीं। वह हँसना चाहता था, लेकिन हँसी होंटों के पास ही रुक गई, और वह लड़खड़ाता हुआ कुर्सी पर गिर गया, और बड़बड़ाने लगा। यही कि वह बम्बई में नहीं रह सकता। वह वापस शिमला चला जायगा। उसे क्या मालूम था कि शहर की लड़कियाँ इतनी चालाक होती हैं! उसने बूट उतार दिये, और पसीने से भीगे हुये मोजों को सूँघने लगा, और फिर मोजों को उसने एक कोने में फेंक दिया। वह शिमला की सुन्दर घाटियों में अपना निवास स्थान बनायेगा। वह यहाँ नहीं रह सकता। वह शिमला की एक अनजान अल्हड़ लड़की से विवाह करेगा, और तेल, नमक की दूकान खोल लेगा। अब रघुवीर ने कोट उतार दिया था। कमीज उतारते हुए वह कह रहा था कि उसे कविता से नफरत हो गई है। और फिर उसने पतलून भी उतार दी, और सिर्फ अन्डरवियर पहिने कुर्सी पर ढेर हो गया। उसे इस जीवन से नफरत हो गई है। वह जीवन को फिर से शिमला में अमर बनायेगा। वह शिमला की पहाड़ियों को कभी भूल नहीं सकता। पहाड़ों पर फैली हुई वह धुंध, सफेद, ठण्डी, नर्म और कोमल! और उसके स्मृति-पट पर उस अल्हड़ लड़की का चेहरा उभरा, जिसने उसे शहर जाने से रोका था। लड़की की आँखों में आँसू थे, और धुंध चारों ओर फैली हुई थी। और वे दोनों धुंध में उड़े जा रहे थे। किधर? कहाँ? रघुवीर ने लड़की को अपनी छाती से लगा लिया।

लड़की की छातियाँ उसके सीने से टकराईं, और एक संगीत, अमर संगीत, पैदा करती गईं। लड़की के दिल का तूफान उसकी ओर बढ़ रहा था, और धुंध चारों ओर फैली हुई थी। लेकिन वह क्या करता? उसने लड़की के गर्म जलते होंठों पर अपने होंठ रख दिये, और वह धुंध की अथाह गहराइयों में खो गया। वह नर्म-नर्म, पतले होंठों का मजा, वह लड़की के सीने का तूफान, उसकी आँखों की विनम्रता रघुवीर कभी नहीं भूल सकता। रघुवीर लड़की को असहाय और निराधार छोड़ कर शहर चला आया। और अब वह फिर वापस जाना चाहता था। क्या वह लड़की अब भी इन्तजार कर रही होगी? शायद! कौन कह सकता है कि उन अमर और अनन्त चुम्बनों का स्वाद अभी तक लड़की के होंठों पर हो? कौन कह सकता है कि किसी जमींदार ने उस लड़की से विवाह न कर लिया होगा? ऐसी सुन्दर लड़कियों को कौन कुंआरी रहने देता है? शहर और गाँव के जीवन में कोई अन्तर नहीं। दोनों जगह जुल्म है, जबरदस्ती है। हर जगह प्रेम का गला घोंट दिया जाता है। और इस जुल्म और जबरदस्ती की फैली हुई कालिमा इनसानों के दिलों को और काला कर देती है। रघुवीर ने अब अण्डरवियर भी उतार दिया है, और अब वह बिलकुल नग्न है। उसका सिर एक ओर लुढ़क गया है, और उसके मुंह से शराब की दुर्गन्ध आ रही है। बाहर नारियल के वृक्ष पर उल्लू चीख रहा है। और हवा जोर-जोर से सायँ-सायँ कर रही है। बेचारा रघुवीर!

और फिर अवतार सिंह! बड़े दिलचस्प व्यक्तित्व का मालिक है वह। अवतार सिंह एक सरकारी डिपो में नौकर है। वह सुबह छः बजे घर से निकल जाता है, और शाम के आठ बजे वापस आता है। वह एक ऐसे डिपो में नौकर है, जहाँ जितना ज्यादा काम किया जाय, उतनी ही ज्यादा तनखाह मिलती है। और अवतार सिंह अधिक-से-अधिक रुपये कमाना चाहता है। वह पंजाब के एक मालदार जाट का लड़का

है। अवतार सिंह कहता है कि आज-कल में उसे तरक्की मिलने वाली है, और तरक्की मिलने का कारण सिर्फ उसके साफ-सुथरे कपड़े हैं, और खास कर उसकी नीली नकटाई, जो उसके सुपरिंटेन्डेन्ट को बहुत पसन्द है। दफ्तर का सुपरिन्टेन्डेन्ट एक अँगरेज है। दफ्तर में बाकी क्लर्क धोती या पायजामा पहिन कर आते हैं, इसलिये वे अधिक पसन्द नहीं किये जाते। और चूँकि दफ्तर में अवतार सिंह ही सब से ज़्यादा अच्छे कपड़े पहिनता है; इसलिये उसे जल्दी तरक्की मिलने वाली है। अवतार सिंह ईश्वर में विश्वास नहीं करता। वह गुरुद्वारे नहीं जाता, और अक्सर कैंची से दाढ़ी के बाल भी काट लेता है। लेकिन सिक्खों के बारे में कोई 'रिमार्क' पास किया जाता है, तो वह बुरा मानता है। वह सिक्खों के विरुद्ध कोई बात सुनना पसन्द नहीं करता। वह विपरीत गुणों का एक विचित्र सम्मिश्रण है, और आजाद खयाल होते हुए भी बड़ा प्रतिक्रिया-वादी है।

आज-कल वह भी जीवन से विरक्त हो गया है। ऐसा मालूम होता है कि इस फ्लैट की हवा में उदासीनता और निराशा बस गई है। वह कहता है कि उसे डिपो का जीवन पसन्द नहीं। आखिर कब तक वह दिन-रात काम करे और क्यों? डिपो की क्लार्की इनसान को गुलाम बना देती है। और यह नौकरी कितनी गिरी हुई और ज़लील है। अन्दर जाने के लिये पहिचान कार्ड का लाना जरूरी है। कार्ड दिखा कर अन्दर जाना पड़ता है, और कोई क्लर्क एक-दो मिनट देर से पहुँचे, तो उसके वेतन में से पैसे काट लिये जाते हैं। यह ज़िन्दगी नहीं, दोस्त, मौत है। और फिर इन क्षणों में कभी खुशी नसीब नहीं होती। कभी तो इनसान जी भर कर हँस ले। किसी औरत से मुस्करा कर बात करे, उसके सुन्दर जानदार बालों से खेल ले। कभी तो औरत की सुन्दरता की दाद दे सके, कभी तो औरत की मनोहर मुस्कान का आनन्द लूट सके। कभी तो इनसान औरत के जिस्म की गर्मी, उसके बालों की

सुगन्ध, उसकी आँखों की दिलकशी, उसकी बातों के संगीत का आनन्द ले सके! लेकिन इस फ्लैट में औरत कहाँ? यहाँ तो हम सब प्रेत रहते हैं, प्राचीन काल के मनुष्य!

तुमने बम्बई आने के लिये लिखा है। आओ, बड़े शौक से आओ, और मेरे पास ठहरो। जब स्टेशन से उतरो, तो बस में बैठ कर शिवाजी पार्क का टिकट खरीद लो, और फिर माहिम पोस्ट आफिस तक आओ। माहिम पोस्ट आफिस के सामने एक गली है। बस, चले आओ उस गली की तरफ। जो दूसरा मकान दिखाई दे, उसकी तरफ निगाह उठाओ। 'आशियाना बिलडिङ्ग' का नाम पढ़ लेना। जैसे ही तुम बिलडिङ्ग में घुसोगे, तुम्हें एक पागल आदमी का सामना करना पड़ेगा। घबराना नहीं। यह पागलखाना नहीं। यहाँ इनसान बसते हैं। यह पागल अकसर दरवाजे के बाहर पड़ा रहता है। यह यहाँ क्यों पड़ा रहता है, क्या करता है, रोटी कहाँ से खाता है? इसका मुझे कुछ ज्ञान नहीं। लोग इसे पागल कहते हैं, लेकिन मैंने इसे कभी कोई ऐसी हरकत करते नहीं देखा, जिससे यह प्रकट हो सके कि यह व्यक्ति पागल है। अकसर यह व्यक्ति आवारा फिरता रहता है। एक काली, सियाह, फटी हुई कमीज पहिनता है। उसके सिर के बाल बिखरे रहते हैं, और उनमें मिट्टी जमी रहती है। लगातार भूखे रहने के कारण यह व्यक्ति बहुत दुबला हो गया है। मैंने उसे कभी किसी से बात करते नहीं देखा। अकसर वह खामोश, चुपचाप लेटा रहता है, और जब लेटे रहने से तंग आ जाता है, तो गली में आ खड़ा होता है, और सिर को झटक कर चलना शुरू करता है, या कभी पीछे मुड़ कर देखता है। मानो अपनी जीवन-निधि कहीं भूल आया है। उसके साथ तुम एक कुत्ते को देखोगे। कुत्ता तुम्हें देख कर भौंकेगा। कुत्ते को देख कर डर मत जाना! वह कुत्ता हर नवागन्तुक पर भौंकता है। उसकी लाल आँखों में तुम दुख और क्रोध की झलक देखोगे। उसके सूखे शरीर को देख कर

तुम आशियाना बिलडिङ्ग के रहने वालों की भूख का अनुमान कर सकोगे। साफ जाहिर है कि जिस घर का कुत्ता भूखा है, वहाँ के रहने वाले स्वयं कितने भूखे होंगे।

निचले फ्लोर में एक म्युजिक मास्टर रहते हैं! उन्होंने एक वेश्या को फाँस रखा है। मैंने इस औरत को अकसर रोते देखा है। अकसर यह औरत सीखचों वाली खिड़की में बैठ कर इधर-उधर जाने वाले लोगों की तरफ परेशान निगाहों से देखती रहती है। मुझे मालूम नहीं कि यह म्युजिक मास्टर ऐसी औरत कहाँ से लाया, और किस तरह ले आया। म्युजिक मास्टर की शकल एक भठियारे से मिलती-जुलती है, लेकिन उसके घर के बाहर एक मोटर खड़ी रहती है। यह मोटर हर रोज खराब हो जाती है। जब रात होती है, तो म्युजिक मास्टर औरत को कार में बैठा कर कहीं ले जाता है, और रात के बारह बजे के बाद घर आता है। मैंने दोनों को कभी खुश नहीं देखा। हर रोज कमरे से लड़ाई-झगड़े की आवाजें आती रहती हैं। म्युजिक मास्टर की औरत जोर-जोर से रोती है, चीखती है, चिल्लाती है, और कहती है कि वह यहाँ से चली जायगी, वह यहाँ नहीं रह सकती। दोनों खूब जोर-जोर से बातें करते हैं। लेकिन दूसरे दिन दोनों फिर उसी कमरे में रहते हैं, सोते हैं, और औरत खिड़की में बैठ कर लोगों की तरफ देखती है, मालूम नहीं क्यों।

अब जरा सीढ़ियाँ चढ़ो। देखो, देख कर चढ़ना! फिसलन होगी। यहाँ ठहर जाओ, जरा दम ले लो। एक ही बिलडिंग में सारे हिन्दुस्तान को देख सकोगे। यहाँ एक क्रिश्चियन लड़की रहती है। यह लड़की है या औरत है, या माँ, या किसी की पत्नी, इसका मुझे कोई ज्ञान नहीं। कहते हैं, इसके तीन बच्चे हैं। ये तीन बच्चे सीढ़ियों में खेलते रहते हैं। बच्चों के शरीर पर फोड़े निकले हुए हैं। क्रिश्चियन लड़की दरवाजे में खड़ी होकर अपने बच्चे से अंग्रेजी में बातें करती है। इस क्रिश्चियन

लड़की का नाम क्या है? नाम पूछने की क्या जरूरत है? बेचारी की हालत खराब है। गोकि रंग सफेद हैं, लेकिन शरीर पर माँस नहीं है। चेहरे की हड्डियाँ उभरी हुई हैं, और ऊपर वाले जबड़े के तीन दाँत आगे बढ़े हुए हैं। क्रिश्चियन लड़की फ्राक पहिनती है। काश शलवार या धोती पहिना करे, तो कम-से-कम पिंडलियाँ हमारी दृष्टि से ओझल रहें। निहायत पतली-पतली-सी टाँगे, और कुछ-कुछ मुड़ी हुईं। मानो शरीर के भार से मुड़ गई हों। मैंने उसके पति को कभी नहीं देखा। बहरहाल कोई पुरुष तो इस घर में आता होगा, नहीं तो ये बच्चे कहाँ से आ गये, और बेचारी क्रिश्चियन लड़की का गुजर कैसे होता होगा? जब पहली बार आओगे, तो तुम क्रिश्चियन लड़की को दरवाजे पर खड़ी पाओगे। वह तुम्हारी तरफ देखेगी, और फिर मुँह मोड़ लेगी। वह हर रोज किसका इन्तजार करती है, इसका मुझे पता नहीं। लेकिन उसकी आँखों में उसके न आने वाले प्रेमी का इन्तजार जरूर है! यह कब तक उसका इन्तजार करेगी, इसके बारे में मैं क्या बता सकता हूँ? मैंने हमेशा उस लड़की की उपेक्षा करने की कोशिश की है, लेकिन मैंने सदैव उसे दरवाजे पर खड़ी देखा है।

क्रिश्चियन लड़की के सामने कुछ मदरासी स्त्रियाँ रहती हैं, बल्कि एक विधवा स्त्री रहती है, जिसकी बहुत-सी लड़कियाँ हैं। लड़कियाँ जवान हैं। लेकिन वह जवानी ही क्या, जो तुम्हें अपनी ओर आकर्षित न कर ले? वह औरत ही क्या, जिसकी ओर एक नजर देखने को जी न चाहे? स्त्री के सौन्दर्य में आकर्षण होना चाहिये। तुम उसे देख लो, तो तुम्हें यह महसूस हो जाय कि तुम एक सजीव, चलते-फिरते दायरे के अन्दर खड़े हो। लेकिन 'आशियाना बिलडिंग' में हुस्न मुर्दा है, जवानी का अभाव है, जीवन जड़ है। मैं समझता हूँ कि जिन्दगी हुस्न से पैदा होती है। सुन्दर चीज को देख कर सुन्दर बनने को जी चाहता है। पर यहाँ तो बदसूरती का मुकाबला है, कुरूपता की प्रतियोगिता है।

लड़कियों की माँ विधवा है, और उसने विधवापन के सारे नियम अपनी लड़कियों पर लागू कर रखे हैं। मैंने लड़कियों को कभी मुस्कराते नहीं देखा। उनके घर से कभी ठहाकों की आवाज नहीं आई। घर के दरवाजे बन्द रहते हैं। और जब कभी मदरासिन के घर का द्वार खुलता है, तो उसमें से एक विधवा का चेहरा तुम्हें घूरता है। दो मोटी-मोटी आँखें क्षण भर के लिये चमकती हैं, फिर एक जवान सुडौल बाजू आगे बढ़ता है, और फिर सारा शरीर पीछे हरकत करता है। तुमने विधवा का चेहरा नहीं देखा? चेहरे पर नफरत की झुर्रियाँ हैं। मिटती हुई जवानी के अन्तिम क्षण, विधवापन की कटुतायें, जीवन से असीम घृणा और एक न मिटने वाली प्यास और तृष्णा का प्रदर्शन मदरासिन की आँखों से झलकता है। सिर्फ मदरासिन की आँखों में ही नहीं, बल्कि उसकी छाया तुम उन जवान लड़कियों की आँखों में भी देख सकते हो। सिर्फ आँखों में ही नहीं, बल्कि उस नफरत, उस प्यास, उस भूख और उस विधवापन का साकार प्रतिरूप तुम उन लड़कियों को देख सकते हो। उनके शरीर में, उनकी चाल ढाल में, उनकी बातचीत में, उनकी प्रत्येक हरकत, प्रत्येक गति में तुम उनकी माँ के विधवापन की मनहूस छाया देख सकते हो। लड़कियाँ अकसर मौन और उदास रहती हैं, और नारियल के पेड़ों की ओर देखती रहती हैं। हम सब अपने कमरे की चाबी इन मदरासिनों को दे जाते हैं। अगर तुम इन लड़कियों की वासना की भूख का अनुमान करना चाहो, तो एक दिन कमरे की चाबी स्वयं उन्हें देना। तुम्हें मालूम हो जायगा कि वे कमरे की चाबी लेने के लिये कितनी व्याकुल रहती हैं। दरवाजा अकसर बन्द रहता है। धीरे से दरवाजा खटखटाओ। तुरन्त दरवाजा खुल जायगा, और एक कुरूप चेहरा तुम्हारी ओर देखेगा।

वह चेहरा! बिलकुल बदसूरत और कुरूप चेहरा, साफ सलेट की तरह, भावना विहीन! न हँसी, न खुशी, न गम, न जिन्दगी, न मौत,

बिलकुल अनुभूतिहीन, निर्जीव चेहरा ! और फिर एक मैला-गन्दा-सा हाथ तुम्हारी ओर बढ़ेगा। मेरी उँगलियाँ कई बार अनायास उन भद्दी उँगलियों से छू गईं, लेकिन एक बार भी कभी ऐसी धड़कन पैदा न हुई, जो एक जवान लड़की के शरीर के स्पर्श से उत्पन्न होती है। उन सब लड़कियों के रूप एक-से हैं। उनके बदन, उनके चलने-फिरने का ढंग, उनके देखने का तरीका एक-सा ही है। वे तुम्हारी ओर बार-बार देखेंगी, लेकिन निगाहों से यह पता चलता है कि उनकी जवानी को पराजय का अनुभव हो चुका है। अगर इन लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा, इनका वातावरण, इनके रहने-सहने के तरीकों को नये ढंग से एक नया रूप दे दिया जाय, तो सम्भव है कि वही लड़कियाँ आफत का परकाला बन जायँ, और इस सोई हुई जिन्दगी में शोला बन कर चमकें !

अगरचे इनका रंग काला है, लेकिन जवानी को रंग से क्या मतलब ? दूर क्यों जाओ ? हमारे मुहल्ले में एक लड़की रहती है, जिसका रंग बिलकुल इन मदरासिनों से मिलता-जुलता है। पर उसके रूप में कितना आकर्षण है, उसके हुस्न में कितनी कशिश है, इसका अनुमान मैं ही कर सकता हूँ। यह लड़की अकसर सफेद साड़ी पहिनती है ! स्याह रंग और सफेद साड़ी ! सफेद साड़ी, और स्याह रंग ! स्याह रंग सफेद साड़ी में खूब चमकता है, खूब फबता है। लड़की को साड़ी पहिनने का ढंग भी खूब आता है। शरीर की प्रत्येक रेखा इतनी स्पष्ट हो जाती है, कि लड़की को बार-बार देखने को जी चाहता है। ऐसा लगता है, मानो लड़की एक चित्रकार है, जो साड़ी का चित्रकार की तूलिका की भाँति उपयोग कर सकती है। एक जरा-सा झटका कि मानव शरीर ने एक नया रूप धारण किया। वह नित्य साड़ी बदलती है—कभी-कभी आसमानी, जैसे नारियल के हरे पत्ते, कभी-कभी लाल, जैसे ऊषा की लाली, सुर्मई, मटियाली इत्यादि-इत्यादि। रंग बदलते हैं, रूप बदलता है, जवानी बदलती है, हर चीज बदल जाती है। पर

लड़की का हुस्न उसी तरह बना है। आओ, मेरे पास आओ! वही लड़की आ रही है! लो, वह आ गई! वह आती है; और आशियाना बिलडिंग के सेकेन्ड फ्लोर के रहने वाले बालकनी में खड़े हो जाते हैं। लड़की के हर कदम की आवाज उनके दिल की धड़कन से मिल जाती है। दूर कबूतर हवा में उड़ते हैं, नारियल के पत्ते हवा में झूमते हैं, सूर्य की सुनहरी किरणें बालकनी पर नाचती हैं। निगाहें लड़की की ओर लपकती हैं। साड़ी शरीर से चिपकी हुई है। शरीर की प्रत्येक रेखा स्पष्ट है, पिंडलियों से लेकर रानों तक। और फिर कूल्हों का संगम! कितना मनोहर, कितना सुन्दर और कितना दिलफरेब है! चित्रकार को दाद दो! उसकी कोमल उँगलियों को चूम लो, अगर चूम सकते हो। निगाह कमर तक जाती है। कमर पर अधिक माँस नहीं। और फिर सीने का फैलाव, छातियों का उतार चढ़ाव—जैसे समुद्र लहरें मार रहा है! लहरें आती हैं, तट से टकराती हैं, और वापस चली जाती हैं। और ऊपर—एक छोटा-सा, सुन्दर चेहरा! छोटे-छोटे, पतले होंठ, और किसी की जबान पतले होंठों पर फिरती हुई! निचला होंठ कुछ खिंचा हुआ, आँखें स्याह, पलकें जवानी के बोझ से झुकी हुई! यह जानते हुए भी कि लोग देख रहे हैं, लड़की शर्माती नहीं। आँखों में मस्ती है, शोखी है, सफलता का गर्व है। लड़की को अनुभव है कि वह अपने हुस्न से लोगों को मंत्रमुग्ध कर सकती है। कितना स्वस्थ अनुभव है वह! वह आगे बढ़ती है। हरीश्चन्द अपने बालों पर हाथ फेरते हुए एक आह भरता है, और कहता है, 'मार डाला, मार डाला, मार डाला रे!' और चटरजी की हँसी! मानों मुर्दा जीवित हो गया हो! और अवतार सिंह का झुक कर देखना! और रघुवीर का वह मिसरा पढ़ना—

'जिन्दगी चाँद-सी औरत के सिवा कुछ भी नहीं!'

और फिर सब का पीछे हट जाना, और कुरसियों पर बैठ कर गालियाँ बकना! खुदा को, सभ्यता को, पूँजीपतियों को, सरकार को,

माँ-बाप को, सब को गालियाँ देना ! रघुवीर का नग्न होकर कमरे में पागलों की तरह चक्कर लगाना ! चटरजी का कुरसी में धँस जाना ! अवतार सिंह का अपनी पगड़ी उतारना, और लम्बे-लम्बे, बदबूदार बालों में कंघी करना, और मेरा लड़की की तरफ देखते रहना, देखते रहना—यहाँ तक कि हुस्न निगाहों से ओझल हो जाता है, यहाँ तक कि जवानी की सुगन्ध हवा में गुम हो जाती है, और किसी के कदमों की मद्धिम चाप धीरे-धीरे खामोश होती जाती है। और सिर्फ गालियां की आवाज मक्खियों के भिनभिनाने की तरह दिमाग से टकराती रहती है ! 'अबे, ओ हरामजादे ! अबे, ओ उल्लू के पट्ठे !...'

कैप्टन शफ़ीकुर्रहमान

भूल

विश्वास कीजिये कि इसमें मेरा बिलकुल क़सूर नहीं था। यदि आप मेरी जगह होते, तो आप भी इसी तरह करते। भला सुबह का क़ैद किया हुआ मुसाफ़िर अगर एक स्टेशन पर यों ही उतर आये, तो इसमें ताज्जुब की क्या बात है? सुबह तड़के से ट्रेन में जो बैठा हूँ, तो बस तीसरे पहर तक डिब्बे ही में नज़रबन्द रहा। बहुत प्रयत्न किये कि किसी तरह जी बहले। ताज़े समाचार-पत्र पाँच-छः बार विज्ञापनों-सहित पढ़ डाले। कई बार चमड़े का बेग खोल कर सारी चीज़ें निकालीं, और फिर अच्छी तरह करीने से रक्खीं। असंख्य सिगरेट पी डाले, किन्तु समय था कि कटने ही में न आता था। कमबख़्त गाड़ी ने भी हर एक स्टेशन पर ठहरने की मानो क़सम खा ली थी। जिस इलाके से मैं

गुज़र रहा था वह बिलकुल उजाड़ और मनहूस-सा था। कई बार साहस करके खिड़की खोली, किन्तु दृश्य ऐसा था कि तुरन्त ही बन्द कर दी। रेत के टीले, काली-काली डरावनी पहाड़ियाँ, मैली-मैली झाड़ियाँ! आकाश पर रेत एक का गुबार छाया हुआ था। वृक्षों का नाम-निशान तक न था। अभी शाम तक संभवतः ऐसा ही इलाका दिखाई पड़ना था। मुझे झुरझुरी-सी आ गई। यह चार घंटे कैसे कटेंगे ?

एक सुन्दर-सा स्टेशन आया, और रौनक़ देख कर मैं ट्रेन से उतर गया। एक चक्कर इंजन तक लगाया, और दूसरा लगाने की सोच ही रहा था कि मुझे किसी ने आवाज़ दी। मैंने इधर-उधर देखा कि शायद किसी और को कोई बुला रहा है। पर वहाँ कोई ऐसा संदिग्ध मनुष्य न मिला। अन्त में मैंने आवाज़वाली दिशा की ओर मूर्खों की तरह देखना शुरू कर दिया।

"अरे तुम !" एक आवाज़ सुनाई दी।

मैं फिर घबरा कर इधर-उधर देखने लगा।

"अरे भई, इस तरफ़ !" फिर आवाज़ आई।

जो कुछ देखा उसे देख कर बस रोंगटे खड़े हो गये। सामने जज साहब खड़े थे। मेरा खून सूख गया। बस, अब ये बिना ठहराये न मानेंगे। वे तुरन्त मेरी ओर लपके।

"खूब! तो तुम चुपचाप ही गुज़रना चाहते थे ? लेकिन आख़िर, पकड़े ही गये।"—वह मेरे कंधे को मसलते हुए बोले।

मैं चुपचाप खड़ा रहा।

"तुम जा कहाँ रहे हो ? तुम्हारी छुट्टियाँ कितनी हैं, और अभी कितनी बाक़ी हैं ? तुम वहाँ कब तक ठहरोगे, और हाँ, एक बात तो भूल ही गया था। तुम्हारे साथ सामान भी है क्या ?"—उन्होंने सवालों की बौछार कर दी।

"जी, मैं घर जा रहा हूँ—मेरा मतलब है, घर जा रहा था। एक हफ्ते की छुट्टी जबरदस्ती ली है।"

"क्यों, क्या बुलाये गये हो या यों ही तफ़रीह के लिये जा रहे हो?"

"जी नहीं, एक शादी में शरीक होना है।"

"और वह शादी कब है?"

"अभी तीन दिन है,"—मेरे मुंह से जल्दी में निकल गया।

"भई, खूब! तुम बड़े अच्छे लड़के हो। अच्छा, कहाँ बैठे थे तुम, वह सामने? अरे कासिम! जरा सामान उतार लो वहाँ से—जरा जल्दी करो।"

"ऐ! नहीं, माफ़ कीजिये...मुझे कल जरूर पहुँचना है। मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ।"

"भई, दो दिन यहाँ ठहरो, और तीसरे दिन मेल-ट्रेन से ठंडे-ठंडे वहाँ पहुँच जाना। आखिर शादी में शरीक ही होना है न?...और शादी भी होगी किसी गैर-जरूरी-से आदमी की। बस, ठीक वक्त पर पहुँच जाना।"

इसके पहले कि मैं कोई और आपत्ति करता, मेरा थोड़ा-सा सामान प्लेटफार्म पर रक्खा था, और गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। मैं हैरान था कि आखिर ये मुझे कहाँ ले जायँगे और यह स्वयं यहाँ कैसे आ गये। कुछ ही महीने हुए, जब मैं घर गया था, तब इनसे मिला था। इनका सारा कुटुम्ब भी वहीं था। शायद बदली हो गई इनकी। बस यही हुआ होगा। आखिर, मैंने डरते-डरते उनसे पूछा—"क्या आपकी बदली हुई है?"

"अख़्खाह! यह तो मैं बताना ही भूल गया। तुम्हें याद होगा, पिछली गर्मियों में मैंने जिक्र किया था कि मैं कुछ जायदाद खरीदने वाला हूँ। मैंने उसे उन्हीं दिनों खरीद लिया था। कभी फ़ुर्सत ही न

मिलती थी कि जायदाद को देखूँ और वहाँ रहूँ। अब खुदा-खुदा करके छुट्टियाँ मिली हैं, और सब को लेकर यहाँ आ गया हूँ। बड़ी ख़ूबसूरत जगह है। वैसे यह सारा इलाका ही बहुत खूबसूरत है, है न?"

"जी हाँ! बहुत ही ख़ूबसूरत!" मैंने सिर हिला दिया।

"तुम्हारा दिल यहाँ ज़रूर लगेगा। चारों तरफ़ शिकार ही शिकार हैं। दस मील पर एक तालाब है, जहाँ मछलियाँ और मुर्गाबियाँ बहुत हैं। यहाँ ऊँट भी बहुत होते हैं। चप्पे-चप्पे पर ऊँट पाया जाता है। कभी ऊँट पर भी सवार हुये हो?"

यह सवाल उन्होंने बिलकुल इस तरह किया, मानो पूछ रहे हों कि कभी हवाई जहाज़ पर भी चढ़े हो।

"जी हाँ! कई बार।"

"ख़ूब! मैं समझा था शायद कभी ऐसा इत्तफ़ाक न हुआ हो। भई, मुझे तो जो मज़ा ऊँट की सवारी में आता है, शायद किसी सवारी में न आता होगा। इनसान कितनी ऊँचाई पर बैठा होता है! और फिर ऊँट की चाल कितनी मस्तानी होती है, जैसे नाच रहा हो।"— यह कह कर उन्होंने अपने दोनों हाथ हिलाये, और इस तरह मुंह बनाया जैसे वह स्वयं ऊँट हों। हम दोनों बाहर आ गये।

"क़रीब ही है वह जगह यहाँ से!" उन्होंने कार में सवार होते हुये कहा—"भई, क्या इत्तफ़ाक हुआ है आज भी! आज मेरा बिलकुल जी नहीं चाहता था कि यहाँ आऊँ। मगर जो दोपहर को तबियत घबराई, तो चल खड़ा हुआ, और तुम्हें पकड़ लिया। हा-हा-हा!"

मैं चुपचाप बैठा था।

"और इत्तफ़ाक पर इत्तफ़ाक देखो कि रज़िया भी आई हुई है आज-कल।"

अरे रज़िया! मैं चौंक पड़ा। रज़िया भी यहीं आई हुई है। वाह, वाह! और मेरे मुँह से निकल ही गया—"रज़िया भी आई हुई है!"

"हाँ, कुछ ही दिन हुये उसे यहाँ आये हुये। और हाँ, ज़रा मेरी जेब से सिगरेट निकाल कर मेरे मुंह में तो लगा देना।"

"मगर आज-कल तो छुट्टियाँ किसी कालेज में नहीं हैं?"

"कहती थी कि कोई छोटा-मोटा इम्तहान देकर आई है और आज-कल छुट्टियाँ हैं। भई, ज़रा माचिस भी निकाल लो, और ज़रा झुक कर सिगरेट सुलगा दो। यों नहीं। हाँ, हाँ, बस। यह रज़िया तुमसे वहाँ मिलती भी रहती है या नहीं?"

"जी हाँ, कभी-कभी मिल ही जाती है।"

'रज़िया भी आई हुई है!' मैंने मन में सोचा—'फिर तो ख़ूब आनन्द रहेगा। पर क्या आनन्द रहेगा? कितनी फ़िज़ूल जगह ले जा रहे हैं मुझे! रज़िया क्या कहती थी—कालेज में छुट्टियाँ हैं? झूठी कहीं की! वैसे ही चली आई। इम्तहानों के दिन नहीं हैं आज-कल।'

"यह सुरमई रंग की पहाड़ियाँ कितनी प्यारी लग रही हैं! और यह सुनहरी रेत के चमकीले टीले कितने दिलफ़रेब हैं! और ये ख़ूबसूरत झाड़ियाँ!—देख रहे हो न? यहाँ की सब से बड़ी ख़ूबी यह है कि यहाँ पेड़ बहुत कम हैं। और कम क्या, सच पूछो तो यहाँ पेड़ हैं ही नहीं। पेड़ों के जमघट से तो मेरा दम घुटने लगता है। मुझे न जाने क्यों पेड़ों से हमेशा की चिढ़ है। और यहाँ ख़ुदा के फ़ज़ल से पेड़ों का नाम-निशान तक नहीं है!"

"जी हाँ!" मैंने ख़ामख़्वाह हाँ में हाँ मिला दी।

"शहरों में तो पता ही नहीं चलता कि सूरज निकलता कहाँ से है और डूबता कहाँ है। मगर यहाँ, यहाँ बाक़ायदा सूरज को निकलते देख सकते हो। और फिर दूसरी ख़ूबी यह है कि इस इलाक़े की आबादी बहुत कम है। जहाँ आदमियों की कसरत हो, वह भी कोई जगह हुई! कीड़े-मकोड़ों की तरह आदमी फिरते हैं! मगर यहाँ बड़े इतमीनान से

मूछों पर ताव देकर सुबह से शाम तक फिरते रहो, क्या मजाल जो एक बच्चा तक नज़र आ जाय!"

मैं तिरछी नज़र से बाहर देख रहा था। पत्थरों के ढेर और रेत के टीले! हरियाली का कहीं नाम तक न था। आदमी की तो बात ही छोड़िये, जानवर तक न दिखाई पड़ता था। ऐसा मालूम होता था, जैसे यहाँ कभी किसी आदमी का गुज़र ही नहीं हुआ, और न कई सौ साल तक किसी के बसने की उम्मीद है!

"एक अर्से से मेरी यही ख्वाहिश थी कि मैं इस तरह की जगह में रहूँ। अब ख़ुदा की मेहरबानी से मेरी यह तमन्ना पूरी हो गई।"—वह कह रहे थे।

इधर मेरा बुरा हाल था। बस, यही जी चाहता था कि चलती मोटर से छलाँग लगा दूँ। मुझे जज साहब की हालत पर अफ़सोस भी हो रहा था और तरस भी आ रहा थी। इनकी किस्मत में यही एक बेहूदा जगह थी! बिल्कुल जैसे किसी ने देश-निकाला दे दिया हो। और मज़ा देखिये कि वह तारीफें करते थकते ही नहीं थे।

"यहाँ से जायदाद शुरू होती है," उन्होंने एक ऊँचे टीले की ओर संकेत करके कहा—"और वह रहा मकान।"

मैंने सामने देखा, एक क़िला-सा दिखाई दिया—बाक़ायदा फ़सील और कंगूरे, छोटे-छोटे लाल पत्थर का बना हुआ। यह किला नहीं, तो और क्या है?

"तो आपका मतलब उस सामने वाली इमारत से है?" मैंने पूछा।

"हाँ हाँ, वही तो है।"

लाहौल विलाक़ुव्वत! जज साहब तो सचमुच किले ही में रहते थे। मेरे ताज्जुब की कोई हद न रही जब मैंने देखा कि किले के चारों ओर एक छोटी-मोटी सी खंदक भी थी।

"शायद तुम उस पुराने ढंग की इमारत को देख कर हैरान रह गये ! यह किला मुगलों के ज़माने का बना हुआ है। यह किसी गवर्नर की हुकूमत थी। जब से हमने इसे खरीदा है, इसकी हालत बिलकुल बदल गई है। हमने इसे तोड़-फोड़ कर अपने ढंग का बना लिया है।"

ज़रा-सी देर में हमने क़िले के अन्दर प्रवेश किया। बिलकुल वही नक़शा था, जो क़िलों का हुआ करता है। खंदक पर छोटा-सा पुल, एक शानदार बड़ा-सा दरवाज़ा। चारों तरफ़ तोपों के चढ़ाने की फ़सील। लेकिन अन्दर जो गये, तो बिलकुल नये ढंग की इमारत ! मेरा शानदार स्वागत हुआ, और आध-घंटे तक वह धमा-चौकड़ी मची कि बस। रज़िया भी मिली। जितने उपहार मैं साथ ले जा रहा था, वह बच्चों में बाँटने पड़े। बेगम साहबा मुझसे एक अर्से के बाद मिली थीं। बोलीं—"शरीर लड़के, तुम्हारा इरादा था कि चुपके-चुपके चले जाओ, लेकिन आखिर पकड़े ही गये न ! आखिर, तुमने खत क्यों नहीं भेजा कि तुम इधर से होकर जा रहे हो ? बिलकुल सैलानी बन गये हो !"

मैंने बहाने तलाश करने शुरू किये। बोला—"देखिये, कल ही तो मुझे इजाज़त मिली, और आज सुबह चल दिया। भला खत किस वक्त लिखता ?"

"तो तार ही भेज देते।"

"जी हाँ, तार तो भेज सकता था, मगर भेजता किस पते पर ? सचमुच मुझे तो यह पता ही नहीं था कि आप यहाँ हैं। और हाँ, मुझे तो अभी आपसे यह पूछना है कि आपने अपने यहाँ आने की मुझे क्यों खबर नहीं दी।"

"लो, और सुनो ! तुम्हारी अम्मी को पता है, अब्बा को पता है, सभी तो जानते हैं कि हम आज-कल यहाँ आये हुये हैं।"

"मगर मेरे तो फ़रिश्तों को भी खबर नहीं थी।"

"आपके फ़रिश्ते ! आपके फ़रिश्ते आपसे भी ज़्यादा बेपरवाह हैं।"

रज़िया मुस्करा कर बोली—"उन्हें पता भी होता, तब भी न आने देते।"

"जी! ज़रा मुझे यह मकान—न, न मेरा मतलब है—यह किला तो दिखा दीजिये।" मैंने बात टाल दी।

मुझे किला दिखाया गया। बेगम मुझे एक योग्य गाइड की तरह एक-एक ईंट के बारे में तरह-तरह की कहानियाँ सुना रही थीं। उन्होंने एक अलहदा कमरे की ओर संकेत करते हुये कहा—"वह कमरा देख रहे हो?"

"जी हाँ, देख रहा हूँ। एक खूबसूरत-सा कमरा है।"

"इसमें भूत-प्रेत रहते हैं बहुत दिनों से।"

"भूत! यहाँ भूत-प्रेत रहते हैं? क्या मतलब है आपका?"

मैंने रज़िया की ओर देखा। वह दूसरी ओर मुँह फेरे हँसी रोकने की कोशिश कर रही थी।

"यहाँ एक मुग़ल गवर्नर को बड़ी बेदर्दी से कत्ल किया गया था। अब तक उसकी रूह यहाँ आती है, और शोर-गुल मचाती है। कभी-कभी उसके साथ कुछ रूहें और भी होती हैं।"

"उसके प्यारे दोस्तों की रूहें होंगी।" मैं बोला।

"तुम मज़ाक समझ रहे हो! सचमुच यहाँ रूहें आती हैं। कई आदमियों ने उन्हें खुद अपनी आँखों से देखा है। बहुतों ने यहाँ सोने की कोशिश की, और वे चीखें मार कर भाग निकले। कई नौकर इस कमरे को साफ करने गये, और बेहोश हो गये। हमारे आने से पहले इस कमरे में ताला बन्द था, और अब भी बन्द है। कभी-कभी इसे खोलते हैं, सफ़ाई या मरम्मत के वास्ते।"

"मगर इस कमरे की सूरत से तो यह शुबहा भी नहीं होता कि यहाँ रूह की क़िस्म की कोई चीज़ आती होगी। बाहर से तो बड़ा खूबसूरत दिखाई दे रहा है।"

"और अन्दर से भी बड़ा सजा हुआ है। हमने इसकी सजावट के सामान को यों ही रहने दिया है, बल्कि बहुत-सी चीज़ें बढ़ा भी दी हैं। इसमें बिजली भी लगी हुई थी। मगर हमने कनेक्शन तोड़ दिया है। मालूम होता है तुम्हें यकीन नहीं आ रहा है?..."

"अजी, यह सब वहम है। न जाने बेचारे गवर्नर को मरे कितने वर्ष हो चुके। भला अब तक उसे उस कमरे से क्या दिलचस्पी हो सकती है?"

ख़ैर, भई, तुम नहीं मानते, तो न मानो। मगर यहाँ कुछ न कुछ है ज़रूर।" बेगम गम्भीरता से बोलीं।

रात के नौ बजे होंगे। हम सब खाने की मेज़ के गिर्द बैठे थे। बात-चीत का विषय था, 'रज़िया का होने वाला इम्तहान।' वह कहती थी कि दुनिया में यदि कोई काम सबसे कठिन है, तो वह बी० ए० का इम्तहान पास करना है। हम सब इस पर न केवल हँस ही रहे थे, बल्कि उसे झुठलाने की भी चेष्टा कर रहे थे।

बेगम मुझ सम्बोधित कर बोलीं—"तुम्हारी अम्मीं मुझे लिखा करती हैं कि तुम सैलानी हो गये हो। पहाड़ तो एक तरफ़, शायद तुमने ऐसी कोई पहाड़ी भी न छोड़ी होगी, जिसे अच्छी तरह नाप न लिया हो। हर बार तुम गर्मियों की छुट्टियों में साफ़ बच कर निकल जाते हो, मगर इस बार तुम्हें सब छुट्टियाँ हमारे साथ ही गुजारनी होंगी।"

मैं मीठे टुकड़े खाने में ऐसा व्यस्त था कि उनकी बातों का उत्तर देना भी कोई ज़रूरी नहीं समझा।

"अच्छा, यह बताओ, तुम हमारे साथ कब तक रहोगे?" बेगम बोलीं।

"मुझे परसों ज़रूर वहाँ पहुँच जाना चाहिये, शादी से कम से कम एक दिन पहले।"

"मगर हम तो तुम्हें चौथे दिन ही जाने देंगे। इससे पहले इजाज़त

अब मामला काफ़ी बढ़ गया था, और चौतरफ़ा हमलों का जवाब देना मेरा फ़र्ज़ था। मैंने सिर ऊँचा उठाया, और बड़े गम्भीर स्वर में बोला—"लेडीज़ एन्ड जेण्टुलमेन! शायद यह बात आपके लिये दिलचस्पी का सबब हो कि मैं कभी डरा नहीं, और न अब डरता हूँ—किसी ज़िन्दा या मुर्दा हस्ती से। मैंने कितने ही वर्ष मुर्दे चीरे हैं। इसलिये मुझे रूहों से कोई दिलचस्पी नहीं रही। और (मैंने कोट का कालर ऊपर उठाया) यह देखिये, मुक्काबाज़ी का खास निशान—बाक्सिंग कलर। मैं मार-पीट में भी किसी से नहीं डरता, और आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि अगर भूत मेरे साइज़ का हुआ या मुझसे कुछ ज्यादा भी हुआ, तब भी मैं उसे नाक आउट कर सकता हूँ। बाक़ी रहा वहम, तो वह मेरे पास तक नहीं फटकता। मैं कई-कई सौ मील पहाड़ों और भयानक जंगलों में अकेला फिरा हूँ, और बड़ी-बड़ी डरावनी जगह सोया हूँ। मैंने तरह-तरह के भयानक नज़्ज़ारे देखे हैं, और अब...अब मैं दावे से कह सकता हूँ कि मैं किसी से नहीं डरता। अगर यकीन न हो, तो आप आज़मा कर देख सकते हैं।"

सब के सब हँस पड़े। मैंने गर्व से चेहरा और गम्भीर बना कर सब की ओर देखा।

"तो क्या आप आज रात उस भूतों वाले कमरे में सो सकते हैं?" रज़िया शरारत-भरी मुस्कराहट के साथ बोली।

मैं चौंक पड़ा। कितना अजीब सवाल था! मेरी मर्दानगी और बहादुरी को साफ़ चुनौती दी गई थी।

"आप चुप हो गये! बताइये न!"—वह फिर बोली।

"जी हाँ, सो सकता हूँ।"—एकाएक मेरे मुँह से निकला।

सब के सब चौकन्ने होकर मुझे देखने लगे।

"'अरे भई, नहीं, भूतों-ऊतों के कमरे में सोने की ज़रूरत नहीं। हम मानते हैं, तुम डरते थोड़े ही हो।"—जज साहब घबरा कर बोले।

"जी नहीं, मुझे मुद्दत से आरज़ू है कि कभी मैं भी एक अदद भूत देखूँ। ख़ुदा ने चाहा, तो आज यह हसरत भी पूरी हो जायगी।"

"मगर यह ख्याल न कीजिये कि वहाँ एक ही भूत आपका स्वागत करेगा, ज़रा-सी देर में एक दूसरा भूत आ जायगा, और फिर तीसरा।... भूत तरह-तरह के रूप बदलते हैं। कभी कुछ बन जाते हैं, कभी कुछ।"—रज़िया बोली।

"अगर सच पूछिये, तो वहम के सिवा कुछ नहीं होता। अगर अब मुझे वहम हो जाय कि इस कमरे में एक बिल्ली है, तो ज़रा-सी कोशिश करने पर कोई काली-सी चीज़ ज़रूर मिल जायगी, जो धीरे-धीरे बिल्ली का रूप धारण कर लेगी, और दरवाज़ा खुलेगा, तो बजाय किवाड़ों की 'चूँ' के 'म्याऊँ' ही सुनाई देगा। और उसमें बात ही क्या है? सुबह तक इस भूतों वाले कमरे का पोल भी खुल जायगा।"

"अच्छा भई, अब जाने दो इस किस्से को। भाड़ में जायँ भूत और चूल्हे में जाय वह कमरा! तुम खा नहीं रहे हो।"—बेगम बोलीं।

"हाँ, हाँ, इतनी मामूली-सी बात को खामख्वाह तूल दे दिया," जज साहब ने कहा।

कुछ देर खामोशी रही। मैंने समझा कि मामला दब गया।

"तो क्या भूतों वाले कमरे का राज़ राज़ ही रहेगा?" रज़िया ने दबी हुई आवाज में कहा।

"राज़ क्यों रहेगा? आज मैं जो वहाँ सो रहा हूँ?"—मैंने मजबूर होकर कहा।

"ज़रा सोचो तो सही। अगर तुम्हारी अम्मीं को इस बात का पता चला, तो वह कहेंगी कि मेरे लड़के को भूतों वाले कमरे में सुला दिया!"—बेगम बोलीं।

"जब आप अम्मीं को खत लिखें, तो इस बात का जिक्र ज़रूर

कीजिये कि किस तरह मैंने एक पुराने वहम का भंडा-फोड़ किया, और सब को भूतों के झूठे डर से निजात दिला दी।"

"और मैं भी इस घटना पर मजमून लिख कर अपने कालेज के मेगज़ीन में छपवाऊँगी," रज़िया मुस्कराते हुये बोली—"कि किस तरह एक मुक्केबाज़ ने मार-मार कर चन्द भूतों का भुर्ता बना डाला!"

"न जाने तुमने भूत को क्या समझ रक्खा है?" जज साहब बोले—"तुम समझते होगे कि वह इनसान की तरह का होता होगा, जिस पर तुम ताकत से काबू पा लोगे। मगर भूत तो बस साया होता है, बिलकुल साया। अगर धुएँ के गुबार में तुम मुक्का भी चलाओ, तो क्या होगा? यही होगा कि मुक्का दूसरी तरफ निकल जायगा।"

"मगर सुना है कि मार से भूत भी भागता है!" रज़िया बोली।

"लेकिन, रज़िया, आखिर तुम्हें इस मामले से क्या दिलचस्पी हो सकती है?" बेगम बोलीं।

"यही कि एक खूबसूरत-सा कमरा, जिसे इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं, कल से उसे इस्तेमाल करने लगेंगे," रज़िया बोली।

"तो गोया यह तजुर्बा हो रहा है। क्या फिज़ूल-सी बात है!" जज साहब बोले।

"खैर, कुछ भी हो, तजुर्बा हो या तफरीह, मैंने फैसला कर लिया है कि आज रात इसी कमरे में सोऊँगा।"

"मगर इस कमरे में बिजली नहीं है।"

"तो कुछ और होगा!"

"हाँ, कन्डीलें हैं कभी की पड़ी हुई।"

"और बिस्तर?" मैंने पूछा।

"बिस्तर भी है—बड़ा मुलायम और आरामदेह। और एक बहुत खूबसूरत रेशमी मसहरी है।"—रज़िया बोली।

"तो क्या सचमुच तुम वहाँ सो रहे हो !" जज साहब बोले ।

"जी हाँ, सचमुच !"

इसके बाद बड़ी देर तक जज साहब और बेग़म ने मुझे मना किया, पर मैं न माना । बेग़म साहबा तो नाराज भी हो चली थीं । मगर मेरी हठ के सामने किसी की न चली । उधर रज़िया थी कि बराबर मुस्करा रही थी । सिर्फ़ रज़िया की वजह से मुझे यह आफ़त सिर पर लेनी पड़ी । वास्तव में मेरा दिल बिलकुल नहीं चाह रहा था । और भला इस तरह के फ़िजूल-से कमरे में सोने को दिल चाहता ही किसका ? मैंने जो बातें की थीं, वह ऊपरी दिल से थी । वैसे मुझे अभी से डर लगना शुरू हो गया था । क्या पता, वहाँ सचमुच ही किसी की प्रेतात्मा आती हो ? और फिर एक तो प्रेतात्मा, दूसरे गवर्नर की प्रेतात्मा ! मुझे कँपकँपी-सी आ गई । अब अल्लाह मालिक है !

रात के ग्यारह बजे थे । चारों तरफ़ सन्नाटा था । एक नौकर उस कमरे का ताला खोल आया था । मैंने जज साहब का शिकारी चाकू चुपके से अपने कोट में छिपा लिया था । मैं उनसे विदा हुआ ।

"अच्छा तो आप सवेरे मुझे जगाने आयेंगे न ?" शब्द मानो मेरे गले में अटक रहे थे ।

आसमान पर काली, डरावनी घटायें छाई हुई थीं । एक कोने में सफ़ेदी पता दे रही थी कि चाँद भी निकला हुआ है । एक लम्बे से बरामदे से होकर मैं ज़रा-सी देर में बग़ीचे की ओर निकल आया । भूतों वाला कमरा मेरे सामने था । एक ऊँचा और पुराने ढंग का भयानक-सा दरवाज़ा, और लाल पत्थर की दीवारें ।

मैंने अपने दिल को तसल्ली दी—'इसमें है ही क्या ? अभी शाम को तो इस कमरे को मैं ख़ूबसूरत और ख़ुदा जाने क्या-क्या कह रहा था ! वहम के सिवा और हो ही क्या सकता है ? और जो इसमें सचमुच कोई प्रेतात्मा हुई, तब ? तब क्या देखा जायगा ।' मैंने मुट्ठियाँ बाँध लीं ।

मैं दरवाज़े के सामने खड़ा था। मोटे-मोटे किवाड़, जिन पर लोहे की पत्तरें, कीलें और ख़ुदा जाने क्या अला-बला जड़ी हुई थीं। मैंने काँपते हुये हाथों से दियासलाई जलाई, और धीरे से किवाड़ खोल कर भीतर झाँकने लगा। अँधेरा घुप था। अन्दर हवा का एक झोंका आया। ज़रा रुक कर, मैंने डरते-डरते दरवाजा पूरा खोल दिया। दूसरी दियासलाई जलाई, और अन्दर कदम रक्खा। मेरी टाँगे काँप रही थीं। सामने एक ऊँची-सी चौकोर चीज़ थी, जो शायद मसहरी थी। और कुछ नहीं सुझाई देता था। 'यह क्या ?' मैं ठिठक कर रह गया। एक अँधेरे कोने में दो आँखें चमक रही थीं। मैंने जल्दी से दूसरी तरफ़ मुँह मोड़ लिया, और छलाँग मारकर एक तरफ़ हो गया। बिलकुल मेरे बाज़ू के साथ ही एक बड़ा-सा चमगादड़ बैठा था। मैं जल्दी से कमरे के बीच में आ गया। मेरे सामने एक लम्बी-सी छाया खड़ी थी, मानो बुत हो !

'कहीं यही तो नहीं वह ?'--मैंने दिल में सोचा। और तीसरी दियासलाई जलाई, और डरते-डरते पीछे देखा। दोनों आँखें मुझे बराबर घूर रही थीं। अब उनके ऊपर दो नोकदार हाथ-से उठे हुये थे, जैसे किसी पर हमला करने वाले हों। अब जो ध्यान से देखता हूँ, तो असंख्य चमगादड़ बैठे हुये थे। दियासलाई बुझ गई ! मेरे सामने एक दरवाज़ा था, जिसमें एक आकृति खड़ी थी--बिलकुल किसी मनुष्य की आकृति ! मैं आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। या ख़ुदा ! आकृति ने हरकत की। नहीं, शायद मुझे वहम हुआ हो। उसने फिर हरकत की। मेरे हाथ से दियासलाई की डिबिया गिर पड़ी, और एक छलाँग लगा कर कमरे से बाहर निकल जाने वाला ही था कि एकाएक मुझे शमादान नज़र आ गया। मैंने काँपती हुई उंगलियों से मुश्किल से कंडील जलाई। इतनी रोशनी हो गई कि मैं साथ रक्खी हुई दूसरी कंडील भी देख सकता था। मैंने जल्दी से उसे भी जला दिया। कमरे

में अच्छी-खासी रोशनी हो गई। मैंने देखा कि मैं एक बड़े कमरे में खड़ा हूँ, जिसमें बीसों खम्भे खड़े हैं, सामने एक कदेआदम आइना है, जिसमें मेरा ही प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। यह आकृति, जो अँधेरे में मुझे चलती हुई दिखाई पड़ रही थी, मेरी ही थी। मेरे सूखे होंठों पर एक सूखी-सी मुस्कराहट आ गई। जिन्हें मैं चमगादड़ और छायायें समझ रहा था, व सजावट की चीज़ें थीं। कमरे में खिड़कियाँ थीं। मैंने एक-एक करके सब खिड़कियाँ खोल दीं। सब में शीशे लगे हुए थे। मैं एक कुर्सी पर बैठ गया। मेरे सामने एक अत्यन्त सुन्दर मसहरी थी। कमरे में कालीन बिछा हुआ था। दीवारों के साथ-साथ बहुत से शमादान थे। एक-दो-तीन-चार—मैंने गिन कर देखा, पूरे चालीस थे। बस, अब इन सब को जला दूँगा, और कमरा जगमगा उठेगा।

'ऐं! यह क्या?' मेरी नज़र कमरे के एक अँधेरे कोने में जम कर रह गई। दो आँखें मेरी ओर घूर रही थीं। आँखें क्या थीं, दहकते हुए अँगारे थे! 'होगी कोई चीज़।'—मैंने दिल में सोचा। पर एक चेहरा भी तो था। बिलकुल काला चेहरा। मोटी-सी नाक, चमकदार, लम्बे-लम्बे नुकीले दाँत और बिलकुल लाल दहकती हुई आँखें, जो मुझे अत्यन्त क्रोध के साथ घूर रही थीं! मेरे सामने कंडीलें हिलने लगीं। 'कोई तस्वीर होगी शायद।'—मैंने फिर अपने दिल को समझाया—'कुछ भी हो, यह गवर्नर साहब का चेहरा तो हो ही नहीं सकता। वह तो खूबसूरत आदमी होंगे। और मान लिया कि ऐसे कुरूप भी हुए, तब भी प्रेतात्मा यों सामने आकर थोड़े ही डराती है? यह तो बाक़ायदा डरा रही है।'

मैंने डरते-डरते फिर उसकी ओर देखा, और काँप उठा। कितना भयानक चेहरा था। ख़ुदा न करे कि यह गवर्नर साहब का चेहरा हो! जरूर कोई तस्वीर ही होगी, पर तस्वीर में कहीं आँखें चमका करती हैं? मैं साहस करके उठा, और कंडील की ओर चला ताकि अच्छी

तरह देख सकूँ। दूसरे कोने से आँखें दिखाई ही न देती थीं। कहाँ गया वह चेहरा? मैंने सन्तोष की साँस ली। अब जो वापस गया, तो आँखें फिर पहले की तरह चमक रही थीं। दो-तीन बार यों ही हुआ। मैंने हिम्मत करके कंदील हाथ में ली, और धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ा। दस ही क़दम बढ़ा हूँगा कि एक बार फिर मैं मुस्कराये बिना न रह सका। सामने एक पुराने ढंग का सिगारदान रक्खा था, जिसमें दो बड़े-बड़े लाल नगीने जगमगा रहे थे, और नीचे सफ़ेद नगीने की कतार चमक रही थी। मैंने सिगारदान को अच्छी तरह टटोला, और वापस आकर कुर्सी पर बैठ गया। 'सिर्फ़ वहम ही वहम है। न यहाँ भूत-प्रेत हैं, न कुछ और। अभी-अभी मैंने क्या-क्या मनगढ़न्त चीज़ें बना डाली थीं। लाहौल विला कुव्वत! इनसान ज़रा-सा वहमी हुआ, और दर्जन भर भूत-प्रेत उपस्थित हो जाते हैं।' मैं हँसने लगा, किन्तु मेरी हँसी तुरन्त ही मद्धिम पड़ गई, और फिर एकदम रुक गई। 'यह क्या आवाज़ है?' मैं चौकन्ना हो गया। कपड़ों की सरसराहट—बिलकुल जैसे कोई चीज एक लिबादा ओढ़े आ रही है। आवाज़ धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। मैंने घबरा कर इधर-उधर देखा। कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। 'कहीं यह प्रेतात्मा तो नहीं आ रही है? और फिर यह सरसाहट तो बिलकुल ऐसी है, जैसे कफ़न हिल रहा हो।' आवाज़ एकदम रुक गई। 'होगी यों ही कोई आवाज़, बाहर से आ रही होगी।' मैंने दिल में सोचा। अभी एक मिनट भी न बीता था कि फिर वही सरसाहट शुरू हो गई। 'कहीं यह पेड़ों की आवाज़ तो नहीं है। मगर पेड़ों की आवाज़ तो सायँ-सायँ-सी हुआ करती है। यह तो बाकायदा कपड़ों की आवाज़ है, और वैसे अब है भी आधी रात। अवश्य कोई प्रेतात्मा आ रही होगी।' आवाज़ फिर रुक गई। मैं दम साधे बैठा था। एक क्षण के बाद फिर आवाज़ आनी शुरू हो गई। कई मरतबा इसी तरह हुआ। 'यह प्रेतात्मा आ क्यों नहीं जाती आख़िर? इतनी देर हो

गई।' मैंने आवाज़ की ओर डरते-डरते देखा। दाहिने ओर की तीसरी खिड़की से आवाज़ आ रही थी। मेरी नज़र वहीं जम गई। कोई चीज़ हिल रही थी। मैंने कन्डील सँभाली, और आगे जो बढ़ा, तो क्या देखता हूँ कि खिड़की का पर्दा हवा से हिल रहा था। बाक़ी खिड़कियों के पर्दे सिमटे हुए थे। मैंने पर्दे को हाथ लगाया। कड़ा कपड़ा था, जिसके हिलने पर ज़ोर से आवाज़ होनी स्वाभाविक थी। मेरे सामने फिर हवा का झोंका आया, और वही सरसराहट सुनाई दी। मैंने पर्दा एक तरफ़ कर दिया, और कमरे में धीरे-धीरे टहलने लगा। 'यहाँ तो कुछ भी नहीं है। यों ही कोई उल्टी-सीधी चीज़ देख ली होगी किसी ने। मशहूर तो पहले ही से था। बस शोर मचा दिया कि भूत-प्रेत! गवर्नर साहब तो कोई नेक आदमी होंगे। कहीं नेक आदमियों की आत्माएँ भी किसी को सताती है!' मैं हँसा, और एक लम्बी-सी जँभाई ली।

'अरे, यह सामने क्या है!' मेरी आँखें एक खम्भे के पीछे जम कर रह गईं। एक सफ़ेद-सी चीज़ धीरे-धीरे हिल रही थी। मैं पूर्ववत् चल रहा था। वह चीज़ मेरी ओर आ रही थी। ख़ुदा जाने वह क्या बला थी!—बिलकुल सफ़ेद कपड़ों में लिपटी हुई। मेरे क़दम सौ-सौ मन के हो गये। मैं वहीं ठहर गया। वह चीज़ भी तुरन्त रुक गई। 'आख़िर क्या हो सकती है यह! मुझ पर हमला करने के लिए दाँव तो नहीं सोच रही है? अच्छा इस बार फिर चलता हूँ।' मैं धीरे-धीरे चला। मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब वह चीज़ भी मेरी ओर बिलकुल उसी गति से बढ़ी, जिससे कि मैं बढ़ रहा था। मैं ठहर गया, और आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। वह भी ठहर गई।

अब मुझ में सोचने की शक्ति बिलकुल न रह गई थी, और न दिल को किसी तरह तसल्ली देने की। एकदम मैं सारी फिलासफी भूल गया। समस्त शरीर का खून सिमट कर मेरी आँखों में आ गया। मैं खड़ा हुआ जिस रहस्यपूर्ण चीज़ को देख रहा था, वह बिलकुल निश्चल

थी। मेरे मस्तिष्क पर यह खतरा छाया हुआ था कि अभी वह कूद कर मुझ पर हमला करेगी। मैं फिर चला। वह भी धीरे से मेरी ओर बढ़ी। मैं फिर ठहर गया। वह भी फिर ठहर गई। अब मुझसे न रहा गया, और मैं हड़बड़ा कर भागा। धड़ाम से एक आवाज़ आई। मैं दरवाज़े के पास ठहर गया, और घूम कर देखने लगा। वह चीज़ उलट गई थी और उसका काला-सा गोल भाग ऊपर को निकला हुआ था। डरते-डरते पास जाकर जो देखा, तो बिजली का पंखा उल्टा पड़ा था। पंखे पर लट्ठे का सफ़ेद गिलाफ़ चढ़ाया हुआ था। पर यह चल किस तरह रहा था। ज़रा-सी देर में सारा मामला साफ़ हो गया। मेरे पाँव में पंखे का तार उलझा हुआ था, और मुझ पर डर का भूत इस तरह सवार था कि मुझे वह तार उलझा हुआ मालूम ही नहीं हुआ। तार दो-तीन खम्भों के इर्द-गिर्द इस तरह चक्कर लगाये हुये था कि मेरे चलने से पंखे को मेरी ही ओर खींचता था। कुछ तो उसके चलने से और कुछ सफ़ेद कपड़े ने मिल कर मुझे डरा दिया। मैंने पंखा ठीक करके एक ओर रख दिया, और फिर टहलने लगा। 'यदि इस बार सचमुच कुछ आ भी गया, तब भी न डरूँगा। मैं भी औवल दर्जे का वहमी हूँ! कभी पर्दों से डरता हूँ, कभी सिंगारदानों से, और कभी बिजली के पंखे से। अगर यही हाल रहा, तो सुबह तक न जाने किस-किस चीज़ से डरने लगूँगा। अब यह विश्वास तो हो ही गया है कि यहाँ कुछ भी नहीं है। क्यों न अब कुछ देर सोया जाय। अगर एक बार आँख लग गई, तो सुबह ही खुलेगी।'

मैंने दोनों कन्डीलें मसहरी के पास कर लीं, और कोट उतार कर बिस्तर पर लेट गया। वास्तव में रज़िया सच कहती थी। बिस्तर बहुत ही मुलायम और आरामदेह था। घड़ी देखी, तो उसमें डेढ़ बजा था। 'बस पाँच-छः घंटे और हैं। इसके बाद मैं उन लोगों के साथ चाय पी रहा होऊँगा। रात खाने पर रज़िया बार-बार मुस्कुरा रही थी, और सुबह मैं

बार-बार हसूँगा। अच्छा अब सोने की कोशिश करनी चाहिये। यह जज साहब भी खूब हैं! वहाँ क्लब में भी जितनी अनोखी बातें होती हैं, उन सबका श्रेय भी जज साहब को ही मिलता है। कोई अच्छा फ़िल्म आया हो, इनसे लाख कहो, हरगिज़ न जायेंगे। यदि जायँगे भी, तो चुपके से, और वह भी किसी ऐसी फ़िल्म देखने कि सारा हाल खाली होगा, और यह अकेले बैठे ऊँघ रहे होंगे! किसी किताब की तारीफ़ करने बैठेंगे, तो ज़मीन-आसमान एक कर डालेंगे। और वह किताब इतनी रद्दी होगी कि पहला ही पृष्ठ पढ़ कर आत्म-हत्या करने की इच्छा होगी। इससे ज्यादा और क्या हिमाकत होगी कि ऐसी फ़िज़ूल-सी जगह खरीद बैठे। और तो और, एक क़िला ही खरीद लिया, और...'हैं! यह क्या चीज़ है?' मैंने डर कर आँखें बन्द कर लीं।

'क्या सचमुच मैंने कुछ देखा था? नहीं, कुछ भी नहीं। वहम होगा। नहीं कुछ था ज़रूर।' मैंने डरते हुये पलकें झपकाईं और एकदम बन्द कर लीं। 'इस बार तो सचमुच कोई चीज़ है।' सारे शरीर में सनसनी-सी दौड़ गई। बिलकुल एक छाया-सी थी, और जज साहब भी तो कहते थे कि भूत सिर्फ एक छाया होता है। मेरा दिल तीव्र गति से धड़क रहा था। मैंने आँखों पर हाथ रख लिया, और आड़ में देखने लगा। एक बड़ी-सी छाया थी किसी विचित्र जीव की। लम्बोतरी-सी छाया थी। दो तेज़-तेज़ पंजे थे और एक लम्बी दुम थी, जो दूर तक चली गई थी सामने दीवार पर। कुछ-कुछ मगर मच्छ से मिलती-जुलती थी। किन्तु मगर मच्छ की छाया दीवार पर कैसे आ गई? मेरे देखते-देखते उसके पंजे हिले, और दुम भी जरा एक ओर मुड़ गई। 'अब तो भागा भी नहीं जा सकता।' सामने ही तो छाया थी। 'रज़िया ने भी कहा था कि भूत तरह-तरह के रूप बदलता है। पर वह चीज़ है क्या? कुछ-कुछ छिपकली-सी लगती है।' मैंने दिल में सोचा—'पर छिपकली इतनी लम्बी-चौड़ी हो किस तरह गई? अवश्य यह कोई भूत ही है।' मैंने धीरे

से दूसरी ओर मुँह मोड़ा, और आहिस्ता से करवट ली। 'अरे यह क्या?' आईने पर एक छिपकली बैठी थी। 'पर इससे क्या होता है? यह तो मामला ही कुछ और है। कहीं इस छिपकली की छाया ही तो नहीं पड़ रही है दीवार पर?' सहसा छिपकली ने हरकत की। उधर दीवार की छाया ने भी हरकत की। मैंने उठ कर चाकू शीशे के सामने कर दिया। सामने दीवार पर चाकू की छाया एक बड़े से छुरे के रूप में दिखाई दे रही थी। मन में आया कि कई बार लाहौल पढ़ूँ। ऐसी मामूली चीज़ों से डर रहा हूँ! यदि यही घटनाएँ मेरे अपने कमरे में होतीं, तो मैं इनकी बिलकुल परवाह न करता।' केवल एक भय था, जो मुझे डरा रहा था। 'क्यों न सारी कन्डीलें जला ली जायँ? सारा कमरा जगमगा उठेगा। अँधेरे ही में सारे भय और सन्देह होते हैं। यह बहुत ठीक होगा।' मैंने दियासलाई की डिबिया निकाली, और एक ओर से कन्डीलें जलानी शुरू कर दीं। दस के करीब जला कर दूसरी ओर लपका। उधर अभी दो-तीन ही जलाई होंगी कि पीछे घूम कर जो देखता हूँ, तो सब की सब बुझ चुकी थी।

'हवा होगी।'—मैंने दिल में सोचा, और एक कंडील हाथ में लेकर फिर सब को जला दिया। अब जो उधर पहुँचा, तो सब की सब बुझ चुकी थी। "कौन बुझा गया? हवा ही हो सकती है।" मैंने ज़ोर से कहा, और हँसने लगा। 'सीधी-सी तो बात है। तेज़ हवा का एक झोंका आया और कन्डीलें बुझ गई। अच्छा इस बार फिर तजुर्बा करते हैं।' मैंने कई कन्डीलें जलाई, और एक ओर हट कर देखने लगा। पहले एक बुझी, फिर दूसरी। इसी तरह सब खत्म हो गई। मुझे कुछ ऐसा लगा, मानो मैंने किसी गुप्त आत्मा को फूँक मारते देखा। मैंने फिर तीन-चार कन्डीलें जलाई, और देखने लगा। एक फूँक ने पहली को बुझाया, फिर दूसरी को। 'अगर यह फूँकें नहीं हैं, तो एक दम ही सब कन्डीलें क्यों नहीं बुझ जातीं?' मैंने फिर एक बार सब

कन्डीलें जलाईं, और ठहर गया। सब की सब एक-एक करके बुझती जाती थीं।

"यह कौन बुझा रहा है यह कन्डील ?" मैंने ज़ोर से कहा।

"मैं कहता हूँ। मुझे जलती हुई कन्डीलें चाहिये। मैं सिर्फ़ मनबहलाव के लिये इन्हें नहीं जला रहा हूँ।" मैंने और ज़ोर से कहा। वे बराबर बुझती जा रही थीं।

"यह कौन कायर बुझा रहा है कन्डीलें ? सामने क्यों नहीं आता ? अगर इस बार बुझाई, तो याद रखना, मैं...मैं...!" मैं बौखला गया, और यह न कह सका कि मैं उसका क्या करूँगा। 'यदि उसने सब कन्डीलें बुझा दीं, तो क्या होगा ?'

मैं झुँझला उठा। 'अच्छा देखूँ, यह बुझाते बुझाते थकता है, या मैं जलाते-जलाते तंग आता हूँ।' मैंने जो कन्डीलें जलानी शुरू कीं, तो अच्छा-खासा तमाशा बन गया। मैं कमरे में भाग-भाग कर कन्डीलें जला रहा था। मुझे पसीना आ गया। आखिर तंग आकर दीवार से लग कर खड़ा हो गया, और कन्डीलों को बुझते देखने लगा। खिड़की का किवाड़ मेरी कमर में चुभ रहा था। मैंने खिड़की बन्द कर दी। कन्डीलें एक-एक करके बुझ रही थीं। आख़िर सब बुझ गईं, सिवा उन दो कन्डीलों के जो मेरे सामने थीं। 'ये क्यों नहीं बुझीं ? कहीं खिड़की के बन्द करने से तो नहीं। यह हवा के झोंके ही तो नहीं, जो कन्डीलों को बुझा रहे हैं ?' मेरा सन्देह विश्वास में बदल गया। मैंने सारी खिड़कियाँ बन्द कर दीं, और बाद में जो कन्डीलें जलाई हैं, तो एक भी नहीं बुझी।

मैं इतना थक गया था कि अपने को धिक्कारने की भी हिम्मत मुझे नहीं रह गई थी। मैंने एक खिड़की खोली, और उसके साथ लग कर खड़ा हो गया। बादल छँट गये थे। चाँद डूब रहा था। फीकी-फीकी चाँदनी फैली हुई थी। शीतल पवन के झोंके आ रहे थे। मैं काफ़ी देर

तक वहाँ खड़ा रहा। बाग के वृक्षों में एक वृक्ष कुछ हिल-सा रहा था। एकाएक मुझे मालूम हुआ कि वह पेड़ नहीं, बल्कि कुछ और है। मैंने ज़रा ग़ौर से देखा। एक मानव शरीर था, जो हरकत कर रहा था, और सीधा इसी कमरे की ओर आ रहा था। वह काला लबादा लपेटे हुये धीरे-धीरे चल रहा था। अजीब बहकी-बहकी चाल थी। उसके कन्धे पर कोई भारी चीज़ थी। ज़रा-सी देर में वह बिलकुल मेरे निकट ही आ गया। मेरे देखते-देखते वह ठहरा, और एकटक मेरी ओर देखने लगा। मैं एकदम पीछे हट गया। 'यह कौन है? कोई राहगीर होगा शायद? किन्तु इस समय और ऐसे उजाड़ इलाके में! और इस क़िले में कौन आ सकता है भला? अवश्य ही यह कोई भूत होगा!' मैंने पर्दे की आड़ से उसे देखा। वह खड़ा खिड़की की ओर देख रहा था। डरावनी आँखें, काला चेहरा, उलझी हुई दाढ़ी, सूखे-सूखे हाथ-पाँव! अत्यन्त डरावनी आकृति थी उसकी। शायद छलावा है यह। ख़ैर, वह जो कुछ भी हो, मुझे विश्वास था कि यह वही है, जिसकी मुझे अब तक प्रतीक्षा थी। 'इसके पहले कि यह मुझ पर हमला करे, स्वयं मैं ही क्यों न इस पर आक्रमण कर दूँ!' वह पूर्ववत् फटी-फटी आँखों से मेरी ओर देखे जा रहा था। 'शायद यही वह दुष्ट आत्मा है, जिसने सबको डरा रक्खा था, और जो इस कमरे में सोने वाले को तंग करती है!' मेरा दिल बुरी तरह धड़क रहा था, और शरीर पसीने से तर था। 'क्या मैं इससे डर जाऊँगा? हरगिज नहीं। अगर मैं सफल हो गया, तो रज़िया...! किस शान से जाऊँगा उसके सामने!' मैंने आस्तीन चढ़ा ली, और चाक़ू मजबूती से पकड़ लिया, और एक हलकी-सी शाल अच्छी तरह लपेट ली।

मैंने धीरे से दरवाज़ा खोला, और उसकी ओर लपका। वह भी चौकन्ना हो कर भागा। उसने पीछे घूम कर देखा। बड़ी ही डरावनी शक्ल थी कमबख़्त की। पूरी दौड़ हो रही थी। उसने अपने कन्धे का

बोझ फेंक दिया, और बेतहाशा भागने लगा। मैं भी पूरे वेग से भागने लगा। उसने मुझे प्लाट के दो चक्कर दिलाये, और फिर फूलों के तख्ते रौंदता हुआ दूसरे प्लाट में जा पहुँचा। मैं क्यारियाँ साफ़ फाँद गया। उसने वहाँ भी चक्कर देने शुरू किये। पर वह धीरे-धीरे थक रहा था। वह चाहता था कि सड़क पर से होकर सामने की झोपड़ी में घुस जाय। पर मैंने छलाँग मारी, और उसे जा दबोचा। उसने छुड़ाने की बहुत कोशिश की, लेकिन बेकार। मैंने उसकी गर्दन पकड़ ली, और कड़क कर बोला—"बताओ, नाबकार और मरदूद, तुझे क्या सज़ा दूँ?"

वह गिड़गिड़ाने लगा।

"आखिर, आज तू पकड़ा ही गया! न जाने तूने कितनों को सताया होगा?"

वह बराबर गिड़गिड़ाये जा रहा था।

"आख़िर, तू है कौन, ओ मरदूद?" मैं चिल्लाया।

"हुज़ूर, मैं बाग का माली हूँ।"

मुझ पर सैकड़ों घड़े पानी पड़ गये। मैं लगा अपनी झेंप मिटाने। "अच्छा, तो तुम माली हो? ख़ूब? तो तुमने हमें पहले ही क्यों न बता दिया? आख़िर तुमने हमें क्या समझा?"

"हुज़ूर, मैं समझा कि आप...।"

"हाँ, हाँ, कहो क्या समझे तुम...?"

"हुज़ूर, मैं समझा कि आप भूत हैं।"

मैं मारे शर्म के ज़मीन में गड़ा जा रहा था। लाहौल-विलाकुव्वत! मैं उसे भूत समझा, और वह मुझे।

"तो तुम इस वक्त कहाँ फिर रहे थे?"

"स्टेशन पर रात की गाड़ी से फल आये थे। वह ला रहा था कि इस कमरे में रोशनी जो देखी, तो..."

मैंने जेब से कुछ निकाला, और उसकी हथेली पर रख दिया, और किसी से यह घटना प्रकट न करने का वचन लेकर वापस दौड़ा अपने कमरे की तरफ़। मेरे चेहरे पर एक मुस्कराहट थी—एक अजीब-सी मुस्कराहट। उस मुस्काराहट में प्रसन्नता, लज्जा और खीझ सब कुछ मिले जुले थे। मैंने सोचा—'चलो क्या हुआ? कौन-सा किसी ने देख ही लिया भला? इसमें शर्म की बात ही कौन है?' मैं हँसता हुआ जा रहा था। ज़रा-सी देर में कमरे का दरवाज़ा आ गया। मैंने अच्छी तरह किवाड़ बन्द कर लिये, और आगे जो बढ़ा हूँ तो किसी ने तुरन्त शाल खींची। मैं वहीं खड़ा का खड़ा रह गया। मालूम होता था, मानो मुझमें जान ही बाकी नहीं रही। हिम्मत न पड़ती थी कि पीछे मुड़ कर देखूं। न जाने किस चीज़ ने शाल थाम ली थी। 'कहीं यह माली-वाली का बहाना तो नहीं? मुझे बेखबर पाकर भूत दाँव करना चाहता था, और शायद कर गया?' मेरे रोंगटे खड़े हो गये। 'खुदा जाने यह क्या बला है?' मैंने चाकू भी बन्द कर लिया था। मेरे हाथ से चाकू गिर पड़ा। अब एक ही उपाय रह गया था—वह यह कि शाल से अलग होने का प्रयत्न करूँ। कुछ देर मैं उसी तरह खड़ा रहा। फिर एकदम मुड़ा और एक ओर छलाँग लगा कर शाल से बाहर निकल गया। अब जो देखता हूँ, तो वहाँ कुछ भी न था—केवल शाल का पल्ला किवाड़ों में फँसा हुआ था! मैं बेदम होकर कुर्सी पर गिर पड़ा, और आँखें बन्द कर लीं। मेरा दिमाग़ बिलकुल थक गया था। इसके बाद कोई घंटा भर मैं चुप-चाप और स्तब्ध बैठा रहा। कई बार कन्डीलें बुझीं, सरसराहट की आवाज़ें आईं, कई चमकदार आँखें भी मुझे घूरती रहीं। मुझे कमरे में एक तरह की छाया भी दिखाई पड़ती रही। किन्तु मेरा दिमाग़ बेकार हो चुका था, और अब मैं कुछ सोच ही न सकता था। मैं सोना चाहता था, किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी नींद न आई। मैंने वक्त देखा, चार बज रहे थे। मैं उस क्षण को कोस रहा था जब मैं प्लेटफ़ार्म

पर टहलने उतरा, और जज साहब की निगाह मुझ पर पड़ी, और फिर मुफ्त में यह मुसीबत मोल ले ली। यदि यह सब कुछ न हुआ होता, तो इस वक्त मैं घर में बड़े मज़े में सो रहा होता। वह तो यही अच्छी है कि जो कुछ हुआ वह मुझी तक सीमित है। किसी ने देखा नहीं, नहीं तो वह हँसी उड़ती कि बस सिर उठाने के योग्य न रहता। ख़ैर, जो कुछ भी था वह बीत गया। बस दो घण्टे और हैं। इसके बाद किस शान से मैं उन लोगों के साथ बैठा होऊँगा! प्रसन्नता से मेरी आँखें खिल गईं। मैं दरवाज़े की ओर मुँह किये बैठा था। कुछ ऊँघने-सा लगा।

खट खट! किसी ने दरवाज़े को खटखटाया।

"आज हवा बड़े ज़ोर से चल रही है," मैंने उच्च स्वर में कहा।

खट-खट-खट!

कहीं यह माली न हो। शायद कुछ कहने आया हो। मैंने ज़ोर से कहा—"कौन हो तुम? माली हो क्या? जवाब दो।"

दरवाजा बराबर हिले जा रहा था।

"बोलते क्यों नहीं? आख़िर कौन हो तुम?" आवाज़ बराबर आती रही।

"जाओ जहन्नुम में, मत बोलो!" मैं झुँझला उठा। 'चलो मैं ध्यान ही नहीं दूँगा उस ओर!' क़रीब दस मिनट बीत गये, और दरवाज़ा बराबर खटखटाया जाता रहा। एकाएक बिजली की भाँति एक विचार मेरे मन में आया—'कहीं यह रूफ़ी तो नहीं—? बस, यह रूफ़ी ही होगा। यह शैतान सुबह-सुबह मुझे डराने आया है। अच्छा, इसे धमकाये देते हैं।' मैंने गला साफ़ किया, और ज़ोर से कहा—"देखो रूफ़ी, इससे कुछ फ़ायदा नहीं। वैसे तुम्हें सूझी खूब है। तुम समझते होगे कि मुझे डरा सकोगे, मगर नहीं, हरगिज़ नहीं। तुम्हारे फ़रिश्ते भी मुझे डरा नहीं सकते, और मैं तुम्हारी हिमाक़त की तारीफ़ करता हूँ कि तुम इतने सवेरे आये हो जो किसी हालत में डराने का वक्त नहीं हो

सकता। अच्छा यही होगा कि तुम चुपचाप दौड़ जाओ, और अपने बिस्तर में जा दबको ......!"

खट-खट-खट! आवाज़ बराबर आ रही थी।

"मुझे डर है कि शायद तुम पिट जाओगे। तुम ऊँचे क्लास में हो गये हो। यह हम मानते हैं, पर इसका यह मतलब नहीं कि तुम पिट नहीं सकते। शायद तुम्हारा खयाल होगा कि जैसे ही मैं दरवाज़ा खोलूँगा, तुम फौरन भाग जाओगे, पर तुम्हें यह पता नहीं कि मैं खिड़की से कूद कर भी तुम्हारे कान ऐंठ सकता हूँ।"

मुझे कोई जवाब न मिला। दरवाज़ा पूर्ववत् हिल रहा था। 'आखिर यह है कौन? रूफ़ी जैसा डरपोक इस वक्त अपने बिस्तर से कैसे निकल सकता है? अगर आता भी, तो अब तक भाग गया होता। अरे, कहीं यह रज़िया तो नहीं? बस, यह रज़िया ही होगी।' मेरे ओंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई। खूब! 'तो यह सुल्ताना रज़िया साहबा मुझे परेशान करने आई हैं!' मैंने बड़े नम्र स्वर में कहना शुरू किया—"खूब! तो आप हैं गोया! मैं माफ़ी चाहता हूँ कि बदकिस्मती से आपको रूफ़ी समझता रहा। आपके तशरीफ़ लाने का बहुत-बहुत शुक्रिया! मेरे ख्याल में आप बहुत पहले आई हैं। क्या मैं आपकी खिदमत में एक नसीहत पेश कर सकता हूँ? वह यह है कि आप अपने इस क़ीमती वक्त को बजाय मुफ्त में ज़ाया करने के अगर अपने कमरे में गुज़ार देतीं, तो कहीं अच्छा था..।"

खट-खट-खट! आवाज़ आने में कोई अन्तर नहीं हुआ।

"मुझे किवाड़ों के इस तरफ़ से ही पता है कि आप दरवाजे के सामने खड़ी हैं। आपने अपना गुलाबी रेशमी ड्रेसिङ्ग गौन पहन रखा है, और एक अजीब किस्म की मुस्कराहट से आपका चेहरा चमक रहा है। आप अपने कालेज मैगजीन के लिए मसाला जमा करने आई हैं, और आपको इन्तजार है कि कब मैं डरकर चिल्लाता हुआ बाहर

निकलता हूँ। मगर मुझे डर है कि आपको मायूसी ही होगी। अच्छा अब आप तशरीफ़ ले जायँ। मैं सोने जा रहा हूँ।"

मैं हँस रहा था कि चोर पकड़ ही गया आखिर। किन्तु मुझे आश्चर्य था कि रजिया अब तक दरवाज़ा खटखटा किस तरह रही है। कितने भारी किवाड़ हैं। रजिया होती, तो कब की थक गई होती। यह तो किसी मज़बूत से आदमी का काम हो सकता है। कहीं यह जज साहब ही तो नहीं? मगर भला जज साहब इस वक्त क्या करने आयेंगे? मुमकिन है शायद वह ही हों। सोचते होंगे कि अब तक तो किसी से डरा नहीं, चलो इसे खुद ही डराये देते हैं। सचमुच यह जज साहब ही हो सकते हैं। कभी-कभी वे बिलकुल बच्चों की-सी हरकतें करने लगते हैं। मैंने भूमिका के रूप में पहले एक ठहाका लगाया, और फिर ज़ोर से बोला---"तो जनाब डराने के लिये तशरीफ़ लाये हैं! अगर आप बारह-एक बजे डराते, तो शायद मैं डर भी गया होता; मगर अब तो अफ़सोस है कि मैं नहीं डर सकता। लेकिन मैं यह भी नहीं चाहता कि आपकी कोशिश बेकार जाय। अगर आप कहें, तो मैं आपका दिल रखने के लिये कुछ देर को झूठ-मूठ डर सकता हूँ, और एकाध हल्की-सी चीख़ मार सकता हूँ, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि सुबह-सुबह अपनी नींद खराब करके आप मुझे डराने आयें और इसका कोई नतीजा न निकले। लेकिन इतना ज़रूर कहूँगा कि आपने मुझे डराने का न सिर्फ़ वक्त ही ग़लत चुना है, बल्कि डराने का तरीक़ा भी काफ़ी ग़लत है।" मैंने एक और ठहाका लगाया।

जज साहब बराबर दरवाज़ा खटखटाये जा रहे थे। थकते ही नहीं थे। मैंने सोचा कि चलो खटखटाते रहें, मेरा क्या लेते हैं। आप ही तंग आकर रुक जायेंगे।...किन्तु आवाज़ बराबर आती रही।

अब मुझे चिन्ता हुई। 'भला कौन हो सकता है? शायद जज साहब नहीं हैं। भला जज साहब मुझे डराने आयेंगे? क्या फ़िज़ूल-सा ख्याल है। मगर इतनी रात गये कौन हो सकता है? जज साहब भी नहीं हैं,

रज़िया भी नहीं है, रूफ़ी भी नहीं है। कहीं यह कुछ और तो नहीं ?' मैंने कई बार सुना था कि प्रेतात्मायें रात के पिछले पहर फिरा करती हैं। मेरे होंठ सूख गये। 'आख़िर आज कुछ-न-कुछ होकर ही रहेगा। अब तक तो ख़ैरियत हो रही थी, मगर इस बार तो मामला संगीन है। कहीं यही वक्त तो गवर्नर साहब की प्रेतात्मा के आने का नहीं है ? अगर हुआ, तो फिर क्या होगा ?' मेरे शरीर में कँपकपी दौड़ गई।

मैंने किसी जगह पढ़ा था कि प्रेतात्मा किसी मकान में आना चाहे, तो सीधी ही नहीं चली आती, बल्कि पहले दरवाज़ा खटखटाती है और इजाज़त लेकर अन्दर आती है। और फिर गवर्नर साहब की आत्मा ? वह तो बहुत ही सभ्य होगी। 'अब क्या किया जाय ? यदि दरवाज़ा खोल दिया, तो ख़ुदा जाने क्या से क्या हो जाय। यदि बन्द रहने दिया, तब भी खतरा ही है। प्रेतात्मा रुष्ट होकर कहीं कुछ ज़्यादती न कर बैठे।'

मैं थोड़ी देर बिलकुल चुपचाप बैठा रहा। 'क्यों न निश्चय ही कर लिया जाय ? जो कुछ होगा, एक बार हो रहेगा।' मैंने तरकीब सोची कि दरवाज़ा खोलते समय मैं किवाड़ की ओट में हो जाऊँगा, और देखूँगा कि अन्दर क्या होता है। दूसरा क़दम घटनाओं के अनुसार उठाया जायगा। यदि मामला ऐसा-वैसा हुआ, तो एक ही छलाँग में कमरे से बाहर हो जाऊँगा।

मैं किवाड़ के साथ लग कर खड़ा हो गया, और दरवाज़ा खोलते ही अत्याधिक तेज़ी से किवाड़ के पीछे आ गया। आगे बढ़ कर जो देखता हूँ, तो बस जान ही निकल गई। मैंने जो कुछ देखा वह अब तक आँखों के सामने फिर रहा है। मैंने देखा कि एक काले रंग की बकरी खड़ी दरवाज़े से अपनी कमर को मल रही थी या खुजला रही थी। मैं लड़खड़ाता हुआ बड़ी कठिनाई से बिस्तर तक आया, और धम से गिर पड़ा। मैंने हँसने की कई बार चेष्टा की किन्तु हँसना तो एक ओर रहा,

मुस्करा तक न सका। इसके बाद मुझे होश नहीं रहा। पता नहीं कब सो गया। मेरी आँख खुली, तो जज साहब और कई लोग मुझे जगाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने बड़ी मुश्किल से मुझे उठाया।

मैंने उठते ही कहा—"ओफ़्फ़ोह! सुबह भी हो गई इतनी जल्दी!"

सब के सब मुझे आश्चर्य से देख रहे थे।

"रातें कुछ छोटी हो गई हैं शायद। अभी-अभी तो सोया ही था मैं।"

वह बड़ी मुश्किल से इतना कह सके—"तुम चाय यहीं पियोगे क्या हमारे साथ ?"

थोड़ी देर बाद हम एक लम्बी-सी मेज़ के गिर्द चाय पी रहे थे। मैं हीरो बना बैठा था। मेरी हर एक हरकत में अभिमान था, शान थी, गम्भीरता थी! सब के सब मुझसे रात की घटनाएँ बार-बार पूछते थे, और मैं बड़ी शान के साथ उन्हें बता रहा था कि वहाँ कुछ भी नहीं हुआ।

"तो क्या सचमुच वहाँ कोई रूह नहीं आती ?" जज साहब को विश्वास ही न होता था।

"यक़ीन कीजिये, बिलकुल नहीं। मैं कुछ देर कमरे में रूह का इन्तज़ार करता रहा, लेकिन जब देखा कि अब कोई उम्मीद नहीं तो सो गया, और ऐसी नींद आई कि सुबह आपके उठाने पर ही उठा, नहीं तो शायद अब तक सो रहा होता।"

"तुमने तो कमाल ही कर दिया। मगर एतबार नहीं आता। क्या सचमुच उस कमरे में भूत नहीं रहते!" बेगम बोलीं।

"न जाने मुझे कितनी बार कहना होगा कि ऐसे ख़ूबसूरत और आरामदेह कमरे मैंने बहुत कम देखे हैं। न वहाँ कोई भूत है, न प्रेत, न कोई रूह। जाने किस मसख़रे ने हवाई उड़ाई है ? वहाँ अगर किसी के आने का इमकान (सम्भावना) हो सकता है, तो वह परियाँ हैं। परियाँ ज़रूर वहाँ आ सकती हैं।"

एक ज़ोरदार ठहाका लगा। सब के सब मुझे बड़े गर्व से देख रहे थे, सिवाय रज़िया के जो दूसरी ओर देख रही थी, और ऐसा लगता था मानो हँसी रोकने की चेष्टा कर रही हो।

कुछ देर बाद मैं और रज़िया कार में बैठ कर सैर को जा रहे थे। दूर-दूर तक काली-काली पहाड़ियां और रेत के टीलों के सिवा कुछ नज़र ही न आता था। एक चक्कर में मैंने मोटर को अजीब बेढंगे तरीक़े से मोड़ा।

"देखिये, ज़रा सँभल कर ?"—रज़िया घबरा कर बोली।

"मेरी आँखों में अभी तक नींद का ख़ुमार बाक़ी है;"—मैंने कहा। "और मेरी आँखों में भी !"—उसने नटखट मुस्कान के साथ कहा !

"यह क्यों ?"

"रात-भर जागती जो रही हूँ !"

"यह किस लिये ?" मैं चौकन्ना हो गया।

"एक तमाशा देख रही थी। मेरे कमरे के ठीक सामने वाले भूतों के कमरे में एक अजीबो-ग़रीब खेल खेला जा रहा था, और ख़ुशक़िस्मती से खिड़कियों में से सब-कुछ नज़र आ रहा था।"

मेरी आँखों के सामने तितलियाँ-सी नाचने लगीं। 'तो क्या इसे सब-कुछ मालूम है ?'

"और कभी-कभी लेक्चर भी सुनाई देता था।"—वह बोली।

"झूठ, बिलकुल झूठ !"—मैंने खिसिया कर कहा।

"अच्छा झूठ ही सही ! मगर वह कन्डीलों का सीन और वह ग़रीब माली ? बस आगे मैं कुछ न कहूँगी।" वह पूर्ववत हँस रही थी।

लाहौल-विलाक़ुव्वत ! तो जैसे उसने सब कुछ देख लिया था।

"तो क्या मैं सचमुच बहुत डरा हुआ था ?"—मैंने बड़ी सरलता से पूछा।

"नहीं, कुछ ऐसे डरे भी नहीं, मगर...!"

"हाँ, मगर क्या ?"

"मगर मुझे एक बड़े दिलचस्प मज़मून का मसाला मिल गया।"

मुझे कुछ-कुछ गुस्सा आने लगा था। मैंने ज़रा बेरुखी से कहा—"तो फिर छपवा दीजिये उस मज़मून को।"

"नहीं, शायद न लिखूँ।"

"क्यों ?"

"बस यों ही! और हाँ, एक बात तो मैं भूल ही गई थी। यह मुक्केबाज़ी का इम्तियाज़ी कलर—यह तो यों ही रहा!" उसने कलर पर उंगली फेरते हुए कहा।

मैं चुप रहा।

"मुझे रात भर जागने का इतना-सा भी अफ़सोस नहीं। ऐसा अच्छा तमाशा मैंने सचमुच कभी नहीं देखा था। पर मुझे इन्तज़ार ही रहा कि कब मुक्काबाज़ी हो। और यह कलर—ज़रा देखूँ तो सही...?" वह सिर झुका कर कलर के शब्द पढ़ने लगी।

"भई सीधी तरह बैठो," मैंने बड़ी मुश्किल से हँसी को रोकते हुए कहा—"नहीं तो कार की टक्कर-वक्कर हो जायगी।"

कहीं सड़क का एक हिस्सा पथरीला था। मोटर का पहिया एक गढ़े में से गुज़रा, और एक ज़ोर का धक्का लगा। हम दोनों सीट से उछले, और उसका सिर मेरे कन्धे से आ लगा।

ज़रा देर बाद मोटर बिलकुल साफ़ और समतल सड़क पर जा रही थी। न कहीं पत्थर थे, न गढ़े और न हचके। पर उसका सिर अब भी मेरे कन्धे से लगा हुआ था!...और मुझ में मानो उसी गवर्नर की आत्मा समाई हुई थी!

सरदार बलवन्त सिंह

पंजाब का अलबेला

यों तो मेरी उम्र उस वक्त तेरह-चौदह वर्ष की थी लेकिन मैं इतना दुबला-पतला और मुनहनी सा लड़का था कि मुश्किल से ग्यारह-बारह वर्ष का दिखाई देता था।

उन दिनों मैं शहर के एक स्कूल में नवीं कक्षा में पढ़ता था और बोर्डिंग में रहता था। वह बोर्डिंग तो नाम मात्र का था। उसके लिए उपयुक्त नाम घोड़ों का अस्तबल हो सकता है। शहर के बाहर एक कच्ची सड़क के किनारे एक बड़ी सी इमारत थी जिसके इर्द-गिर्द कुछ जगह छोड़ दी गई थी। इमारत चौकोर थी। अन्दर एक बड़ा सा मैदान था जिस पर घास उगी हुई थी और उसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक बरामदा चला गया था। फ़र्श की ईंटें जगह जगह से उखड़ चुकी थीं और उनमें से गर्द निकल-निकल कर चलने वालों के क़दमों के साथ

उड़ा करती थी। कमरे बहुत बड़े-बड़े थे और एक-एक में कई-कई लड़के रहते थे। हर लड़के के लिए एक आलमारी, एक चारपाई, एक कुरसी और आधी मेज़ का प्रबन्ध था।

रसोईघर का कुल प्रबन्ध लड़कों के जिम्मे था। रसोई में तीन नौकर थे—एक रसोइया और दो नौकर खाना खिलाने और अन्य कामों के लिए।

रसोईघर में कोई चीज मोल न आती थी। सब के सब जाटों के लड़के थे। घी और गेहूँ सब के घर से आ जाते थे और ज़रूरत की अन्य चीजें जैसे ईंधन, सब्ज़ी तरकारी मारधाड़ से प्राप्त की जाती थीं। बोर्डिंग के पीछे एक अराईं (पंजाब की सब्ज़ी तरकारी बोने और बेचने वाली जाति) के खेत थे। उस अराईं की एक तरहदार लड़की और दो सजीले लड़के थे। दिन भर लड़के होस्टल की छत पर बैठे लड़की को इशारे करते और रात के समय खेतों से ताज़ी-ताज़ी तरकारियाँ उठा लाते! अराईं ने होस्टल के सुपरिन्टेन्डेन्ट से लड़कों की शिकायतें की लेकिन बेचारा सूजे हुए चेहरे वाला सुपरिन्टेन्डेन्ट अपनी दाढ़ी खुजला कर रह जाता। वह ख़ुद लाचार था। अराईं को समझा-बुझा कर वापस भेज देता और लड़कों से सिर्फ़ ज़बानी पूछताछ करता। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने अराईं की शिकायत पर लड़कों से बीसों बार पूछा होगा पर लड़कों पर इसका कभी कोई प्रभाव न पड़ा और यह लूट जारी रही।

सुपरिन्टेन्डेन्ट पक्का सिक्ख था। खूब लम्बी लहराती हुई दाढ़ी, छोटी पीले रंग की पगड़ी पर उसका यह बड़ा नीले रंग का साफ़ा, तंग पायजामा, ढीला ढाला कोट। उसका इज़ारबन्द उससे कभी नहीं संभलता था, सदा नीचे लटकता रहता। नित्य बिना नाग़ा गुरुद्वारे जा कर पाठ करता। वह लड़कों की इस ज़्यादती के सख्त खिलाफ़ था। लेकिन होस्टल में उसकी हैसियत बस नाम ही के लिए थी। बेचारे की बीबी

और बच्चे सदैव बीमार रहते। उनकी सेवा-सुश्रूषा से छुट्टी पाता तो कभी-कभार हॉस्टल में आ निकलता। यों दिखलाने के लिये लड़के उसका बहुत आदर करते थे, लेकिन वास्तव में उन्हें उसकी कोई परवाह न थी।

जब वह होस्टल में प्रवेश करता तो प्रायः रसोईघर का एक नौकर उसके साथ होता। बरामदे में दाखिल होते ही वह रुक जाता और टाँगें फैलाकर खड़ा हो जाता। उसका मुँह और आँखें हमेशा सूजी रहती थीं और आँखों से हमेशा पानी बहता रहता जिसे वह झाड़ननुमा रूमाल से कभी-कभी साफ़ कर लिया करता था। आते ही वह एक हलकी सी फूटी खाँसी खाँसता ताकि सबको उसके आने की खबर हो जाय। सबसे पहले वह नौकर से बात शुरू करता। किसी मामूली सी बात पर जवाब तलब किया जाने लगता—हूँ...क्यों बे सुअर ! यह पानी तूने गिराया... अबे रास्ते ही में...हैं ?...किसी ने भी गिराया, तूने इसे साफ़ क्यों नहीं कर दिया झाड़ू से...!"

इतने में लड़कों को भी मालूम हो जाता कि हज़रत आ गए हैं। सबसे पहले बग़दाद सिंह, जिसका चेहरा चुकन्दर की तरह सुर्ख़ था, हाथी की तरह झूमता हुआ आगे बढ़ता और बड़ी गम्भीरता से हाथ जोड़ कर कहता—"सत् श्री अकाल, सरदार जी !"

"सत् श्री अकाल !" फिर सुपरिन्टेन्डेन्ट का पहला सवाल यह होता—"क्यों, सब ठीक ठाक है न ?"

बग़दाद सिंह यह बड़ा हाथ थप मारने के अन्दाज़ में उठाकर कहता—"साब ठीक ठाक है जी।"

सुपरिन्टेन्डेन्ट कुछ चुप रहता। अब और लड़के भी जमा होने शुरू हो जाते।

सुपरिन्टेन्डेन्ट के शरीर की बनावट भी अजीब सी थी। मोटा तो वह था ही लेकिन व्यायाम न करने के कारण ऊपर की धड़ और टाँगें

हलकी थीं और पेट खूब फूला हुआ। अतः जब वह इतमीनान के साथ बड़ी गम्भीर आकृति बनाकर, कोट को पेट के आगे से हटाकर दोनों हाथों को कूल्हों पर रखकर खड़ा होता तो उसका फूला हुआ पेट और भी आगे को बढ़ जाता और वह किसी सँपेरे की बीन की तरह दिखाई पड़ने लगता। उसे देख कर लड़कों को हँसी आ जाती। सुपरिन्टेन्डेन्ट दिल में समझता था कि लड़के उसी पर हँस रहे हैं। अतः वह ज़रा बेतकल्लुफ़ होकर बनावटी ग़ुस्से से पूछता—"बग़दाद सिंह, तुम बड़े शैतान हो गए हो?"

"जी मैं!" बग़दाद सिंह अपनी मोटी सी उंगली अपनी छाती पर रखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहता—"वाह गुरू, वाह गुरू'...मैं तो आपका दास हूँ जी। कहिये तो अभी सिर उतार कर रख दूँ चरणों में आपके।"

इस बात पर लड़के खूब ठहाके लगाकर हँसते। कोई लड़का किसी की ओट में होकर कहता—"किसका सिर?"

अब बग़दाद सिंह नथुने फुलाकर ललकारता—"ओय ओय...बच्चू, सरदार जी खड़े हैं, नहीं तो अभी तुझे मुर्ग़ा बना देता पकड़ कर।"

इसके बाद सुपरिन्टेन्डेन्ट इसी तरह बातें करता हुआ होस्टल में लट्टू की तरह घूम जाता और बाहर निकलने से पहले एक बार लड़कों को और चेतावनी देता—"अच्छा, अब सब्ज़ी बाज़ार से आती है न?"

"जी, बिलकुल...अब तो हम रोज़ का हिसाब भी लिख कर रखते हैं, देखियेगा?"

वह अच्छी तरह जानता था कि ये लोग झूठ बोल रहे हैं लेकिन वह इसी बात से सन्तुष्ट था कि लड़के कम से कम उसकी इज़्ज़त तो रख लेते हैं। वह इसी बात पर अपनी ख़ैर मनाता, हिसाब वग़ैरह देखे बिना 'अच्छा अच्छा' कहता हुआ चला जाता।

उसके जाने के बाद लद्धा सिंह पानी के गिलास में से कुछ बूँदें

आँखों पर टपका लेता और कुल्हों पर हाथ रखकर खड़ा हो जाता। फिर तौलिये से आँखें पोंछता हुआ कहता—"ऊँहूँ, ऊँहूँ"...बग़ादादसिंह! सब ठीक ठाक है न?"

मैं केवल आयु में ही छोटा नहीं था बल्कि दुबला-पतला भी था, इसलिये वे सब मुझे मेरे असली नाम से पुकारने के बजाय बकरी सिंह के नाम से सम्बोधित करते थे। बकरी सिंह नाम तो बहुत बुरा था लेकिन थोड़े ही दिनों बाद यह नाम मेरे लिए अजनबी या अपरिचित नहीं रहा। अब सिर्फ़ मेरी हँसी उड़ाने के लिए यह नाम नहीं लिया जाता था बल्कि बहुत गम्भीर वार्तालाप में भी मुझे इसी नाम से सम्बोधित किया जाता था। मैं कमज़ोर था और वे लोग सरकारी साँड़ों की तरह पले हुए थे, लेकिन वे मुझ पर हाथ उठाना गऊहत्या के समान पाप समझते थे। यहाँ तक कि अगर कभी मैं क्रोध में आकर उनमें से किसी को लड़ने के लिए ललकारता भी तो वह मेरे सामने हथियार डाल देता। मैं अपनी दुर्बलता के कारण उन लोगों के बीच बिलकुल सुरक्षित था।

एक बार गरमियों के मौसम में सिक्खों के किसी त्योहार की हफ्ते भर की छुट्टियाँ हुईं। क़रीब क़रीब सभी लड़के बोरिया-बिस्तर बाँधकर अपने अपने घरों को चल दिये। मैं मेहनती लड़का था। पहले तो होस्टल ही में छुट्टियाँ बिताने का निश्चय किया लेकिन फिर इतने बड़े होस्टल में अकेले जी न लगा। न वह ताज़ी-ताज़ी सब्ज़ियाँ, न वह चहल-पहल। रात के समय अँधेरे बरामदों में भुतने नाचते दिखाई देते थे। अतएव दो ही दिन बाद मैंने भी अपने गाँव जाने की ठानी।

गाँव में मेरी माँ, बुआ और दो बड़े भाई रहते थे। मैंने मैले कपड़ों और कुछ किताबों की गठरी बाँधी और साईकिल के पीछे कैरियर पर रखकर रस्सी से उसे बाँध दिया। पच्चीस मील का सफ़र था, पम्प, सुलेशन, कैंची आदि ज़रूरी सामान चमड़े के छोटे थैले में रख लिया।

दोपहर के भोजन के बाद थोड़ी देर आराम किया और जब धूप की तेज़ी कुछ कम हुई तो चल दिया।

उस समय पाँच बजे थे। खयाल था कि अधिक से अधिक चार घन्टे में गाँव पहुँच जाऊँगा।

× × ×

धूप हलकी पड़ चुकी थी, लेकिन गर्मी अब भी काफी थी। सड़क बड़े-बड़े खेतों में से होकर जाती थी। रास्ते में सड़क से ज़रा परे हटकर जगह-जगह रहट चलते दिखाई दे रहे थे। कुओं का साफ़ स्वच्छ पानी झीलों में गिरता हुआ आँखों को कितना भला मालूम होता था। इन पर उन कुओं के इर्द-गिर्द कैंची से कतरी हुई दाढ़ियों वाले किसान मोटी सूती कपड़े की लुंगियाँ बाँधे बड़े सुरूर में हुक्के गुड़गुड़ाते दिखाई पड़ते थे। जब कुओं पर काम करने वाली लड़कियाँ और स्त्रियाँ खेतों में मटक-मटक कर इधर-उधर चलती थीं तो उनकी लम्बी-लम्बी चोटियाँ नागिनों की तरह बल खा-खाकर लहराती थीं। बैलों की टाँगों में घुस-घुसकर भूँकने वाले कुत्ते अलग शोर मचा रहे थे और अपनी मैली-कुचैली चुंदरियों में सूखे हुए गोबर के टुकड़े जमा करने वाली बालिकायें कभी-कभी अपना काम छोड़कर गिलहरियों की तरह मेरी ओर देखने लगती थीं।

अभी मैंने चार-पाँच मील का ही फ़ासला तय किया था कि सायकिल पंचर हो गई। मैंने सड़क से हटकर पानी की तलाश में इधर-उधर निगाह दौड़ाई। रहट बहुत पीछे रह गया था, इसलिए एक पोखरे के किनारे सायकिल को लिटा दिया। पंचर बहुत बड़ा था। डबल पंचर लगाने में बीस-पचीस मिनट लग गये। दो मील चल कर सायकिल की हवा फिर निकल गई। अबकी पानी भी नज़दीक नहीं था। इसलिए सायकिल लुढ़काते हुये आध मील के क़रीब पैदल चलना पड़ा। सड़क के किनारे एक गाँव था। वहाँ एक सायकिल वाले की दूकान भी थी। मैंने सायकिल उसे सौंप दी। मेरा लगाया हुआ पंचर उखड़ गया था। उसे नये सिरे

से ठीक किया गया। इसी गड़बड़ में सूरज क्षितिज तक जा पहुँचा और मैंने अभी आधा सफ़र भी तय नहीं किया था। पंचर लग जाने पर मैंने सायकिल खूब तेज चला दी। रास्ते में मुर्गियाँ कुड़कुड़ाती और फड़फड़ाती हुई इधर-उधर भागतीं और कुछ दीवारों पर जा बैठतीं। गाँव से बाहर निकला तो सूर्य प्रायः अस्त हो चुका था। खुली हवा थी। धुआँ, गर्द, शहर की पक्की दीवारों की तपन आदि का नाम तक न था। कुछ दूर तक मैंने ख़ूब ज़ोर से सायकिल चलाई, यहाँ तक कि मैं हाँफ गया। प्यास भी लगने लगी। खुले आकाश के नीचे जहाँ तक नज़र जाती थी, खेत ही खेत फैल हुए थे। कहीं-कहीं बबूल के पेड़ झुंडों में एक दूसरे के पास खड़े हुए ऐसे दिखाई देते थे जैसे कानाफूसी कर रहे हों। खेतों की पगडंडियाँ कैंचियों की भाँति एक दूसरे को काटती हुई दूर तक चली गई थीं। दूर क्षितिज में कोई व्यक्ति घोड़े पर सवार उसे सरपट दौड़ाये चला जा रहा था, इतनी तेज़ी से जैसे न तो उसका घोड़ा कभी थकेगा और न ज़मीन ही कहीं पर खत्म होगी। बस इसी तीव्र गति से अनन्त काल तक दौड़ता चला जायगा और वह स्वयं इसी जोश और उत्साह से रहती दुनिया तक इस पर बैठा रहेगा। ऊँचे उड़ने वाले पक्षियों की टुकड़ियाँ आकाश की ओर उड़ती चली गईं, यहाँ तक कि वे पक्षी बिलकुल छोटे-छोटे बिन्दु-मात्र दिखाई पड़ने लगे। आकाश का विस्तार असीम था और पक्षियों की उड़ान-शक्ति का कोई अन्दाज़ न था। वायु के झोंके चलने लगे और मीलों तक फैले हुए खेतों में उगे हुए पौदे एक रुख़ को झुक जाते थे, मानो कोई दैवी राग सुनकर एक साथ सिर धुन रहे हों। वास्तव में वह कोई स्वर्गीय राग ही था जिसे सुनकर सवार ने मुँहज़ोर घोड़े को सरपट दौड़ा दिया, पक्षी तीर की सी तेज़ी के साथ आकाश मंडल में उड़ने लगे और खेतों में पौदे मस्ती में आकर झूमने लगे।

मौसम अति सुन्दर था। मैंने रूँ-रूँ करते हुए रहट के पास सायकिल रोक ली, नहाने को जी चाह रहा था, अतः मैं कपड़े उतार कर ओलू

(कुएँ का चौबच्चा) में जा घुसा। बैलों की आँखों पर पट्टियाँ बँधी हुई थीं। वे सिर हिलाते और मुँह से झाग उड़ाते तेज़-तेज़ क़दम उठाने लगे। रहट गीत गाने लगा और पानी इस तेज़ी से बाहर गिरने लगा जैसे कुएँ में पड़े-पड़े उसका दम घुट गया हो। ठंडा पानी मेरे झुलसे हुए शरीर पर गिरा तो मैंने अत्यन्त तरावट का अनुभव किया और सँभल कर झाल के नीचे ही बैठ गया। पानी, मलमल की सी बारीक चादर में से आकाश, धरती, पेड़-पौदे, कुलेलें करते हुए बछड़े, कलाबाज़ियाँ लगाते हुए मेंडक, सब मेरी ख़ुशी में बराबर का भाग ले रहे थे।

मैं बहुत देर तक नहाता रहा। बड़ी-बड़ी मूँछों वाला किसान, जिसकी ढीली-ढाली पगड़ी में से कानों के पीछे चिकने पट्टे दिखाई पड़ रहे थे, हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ उधर आ निकला। मुझे ख़ुश देखकर मुस्कराने लगा। ओलू में से निकलने को मन न चाहता था, लेकिन सूर्यास्त हो चुका था और क्षितिज के निकट धुएँ की एक काली लकीर सी खिंच गई थी। अतएव मैं ओलू में से निकला और गीले शरीर पर कपड़े पहन कर फिर अपनी यात्रा पर चल पड़ा।

अब मैंने सोचा कि रास्ते में किसी जगह पर भी नहीं रुकूँगा। मैंने सायकिल पहले से भी तेज़ चला दी। पक्की सड़क का लगभग आठ मील का रास्ता रह गया था और खेतों का रास्ता अभी क़रीब-क़रीब इतना ही था। मेरी सायकिल हवा से बातें करने लगी। आधे रास्ते पर एक गाँव था, जिसे क़िला काहनसिंह कहते थे। अच्छा खासा बड़ा गाँव था। पाँच-सात पक्के मकान भी थे। एक छोटा स्कूल भी था। पहले सोचा कि आज की रात इसी गाँव ही में बिता दूँ, लेकिन फिर घर का ख़्याल आया। हमारे घर के आँगन में एक छोटा-सा कुँआँ था, जिस पर एक लोहे का डोल पड़ा रहता था। सोचा कुएँ पर डोल भर-भर कर नहाऊँगा। माँ कई कई तहोंवाले पराठे पकायेगी और मैं मज़े ले-लेकर खाऊँगा। यदि रास्ते में कोई ख़ास रुकावट पैदा न हो तो मेरे

लिए घर पहुँचना असम्भव न था। इसलिये मैंने फिर ज़ोर-ज़ोर से पैडिल चलाना शुरू किया। जब मैं बिजली की तरह गाँव में से होकर गुज़रा तो गाँव के नंग-धड़ङ्ग फूले हुए पेटों वाले बच्चे "ओये-ओये" का शोर मचाते मेरे पीछे भागे। कूड़ा के ढेर सूँघते हुए कान और मटियाले कुत्ते भी दुमें हिलाते हुए मेरे पीछे-पीछे हो लिए। कुत्तों को बेतरह भूँकते देखकर मसजिद के कच्चे चबूतरे पर बैठे हुए एक नौजवान ने गुस्से में आकर हुक्के की नली खींच मारी। गाँव से बाहर एक मुर्दा बैल पर झपट्टे मारने वाले बड़े-बड़े गिद्ध शोर-गुल सुनकर चौंक पड़े और अपने लम्बे-लम्बे पर फड़फड़ाते और उचकते हुए ज़रा परे हट गये। उधर मैं किसी भागे हुए डाकू की तरह बड़ी तेज़ी से चला जा रहा था। यहाँ तक कि लड़के और कुत्ते बहुत पीछे रह गये और उनका शोर भी मद्धिम पड़ गया।

आगे सुनसान सड़क के दोनों किनारों पर पास-पास खड़े हुए शीशम के पेड़ों का सिलसिला शुरू हो गया। उनकी नीचे गिरी हुई सूखी पत्तियाँ मेरी साइकिल के पहियों के नीचे चर्र-मर्र करती हुई घूमने लगीं। गाँव के बच्चों की तरह वे दूर तक तेज़ी से चक्कर खाती हुई मेरा पीछा करतीं और फिर जैसे दम फूल जाने पर वे हँसकर एक जगह बैठकर रह जातीं।

अब एक तारा भी दिखाई देने लगा था और स्वच्छ आकाश पर पीला-पीला चाँद किसी तालाब में तैरती हुई काँसे की थाली की भाँति दिखाई पड़ता।

दायें-बायें दूर तक ऊबड़-खाबड़ भूमि चली गई थी। काँटेदार झाड़ियों के सिलसिले शुरू हो गये थे। यहाँ पर भेड़ियों का भी खतरा था। अगर भेड़ियों का कोई ग़ोल आ घेरे तो फिर! मैं भयभीत होकर सायकिल और भी तेज़ी के साथ दौड़ाने लगा। धीरे-धीरे सूर्यास्त के बाद दिन की रही-सही रोशनी भी खत्म हो गई। सिर्फ़ चाँद की फीकी

चाँदनी छिटकी हुई थी। शीशम के पेड़ों के कारण सड़क पर और भी अधिक गहरा अंधकार छा गया था। मैंने इससे पहले केवल दो बार यह सफ़र अकेला किया था, लेकिन दोनों बार दिन ही में सफ़र ख़त्म हो गया था। मेरा ख्याल था कि दो-ढाई मील पर काकूशाह के मक़बरे के पास से सड़क छोड़कर अपने गाँव की तरफ़ घूम जाऊँगा। दिल को कुछ संतोष हो चला था कि कम से कम सड़क का सफ़र तो ख़त्म होने वाला था।

मैं अंधाधुंध चला जा रहा था कि आगे सड़क रुकी हुई मालूम हुई जैसे नये सिरे से बनाई जा रही हो। मैंने सायकिल धीमी कर दी। नज़दीक पहुँच कर पता चला कि सचमुच सड़क बन रही है। सारी सड़क उखड़ी पड़ी थी। लाचार हो सायकिल से उतरकर ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर पैदल चलना पड़ा। यह एक नई आफ़त आ पड़ी थी।

रास्ते में सड़क के किनारे-किनारे पठान मज़दूरों की झोपड़ियाँ बनी हुई थीं। हम लोग उन्हें 'राशे' कहा करते थे। यह 'राशे' ख़ूब मोटे-ताज़े और भयानक सूरत वाले होते थे। मैंने सुना था कि यह लोग बच्चों को बोरियों में बन्द करके काबुल ले जाते हैं और आठ-दस रुपये में बेच डालते हैं। मैं मन ही मन भयभीत भी था, लेकिन ज़ाहिर में बड़े हौसले के साथ बढ़ता चला गया। आग के लपकते हुए शोलों की काँपती हुई रोशनी में 'राशों' के भयानक चेहरे, उलझे हुए बाल और चमकती हुई सुर्ख़ आँखें साफ़ दिखाई पड़ रही थीं।

बड़ी मुश्किल से यह रास्ता भी ख़त्म हुआ और मैं फिर सायकिल पर सवार हो गया। रात भीग चुकी थी। इस समय तक पहले तो मुझे गाँव पहुँच जाना चाहिए था या गाँव के पास ही होना चाहिए था। अब सिवाय चलने के और कोई रास्ता न था। काकूशाह के मक़बरे के पास पहुँच कर मैं पगडंडी पर हो लिया।

तंग रास्ता साफ़ दिखाई नहीं देता था, इसलिए मुझे सायकिल से उतरना पड़ा। खेतों में पानी था। मुझे एक निशानी याद थी। फ़र्लांङ्ग के क़रीब एक पुराना रहट था जो आजकल सुनसान पड़ा था। मैंने पहले उसी का रुख किया। जब पानी से बचता हुआ कुएँ तक पहुँचा तो देखा कि आगे पानी और भी अधिक दूर तक फैला हुआ है। पगडंडी पानी में ही गुम हो गई थी। मैं पानी से बचता हुआ सूखे रास्ते से चलता गया। दो-ढाई फ़र्लाङ्ग चलने के बाद पानी कम हुआ और मैं अयोजन गाँव की तरफ़ चल दिया। लेकिन बहुत दूर निकल जाने के बाद भी गाँव का नाम निशान तक दिखाई न दिया।

धुँधली चाँदनी में मैं चलता ही गया। अब मुझे संदेह हुआ कि कहीं मैं ग़लत रास्ते पर तो नहीं जा रहा हूँ। हर तरफ़ निगाह दौड़ाई। खेतों और वृक्षों के सिवा कुछ दिखाई न देता था। कुछ खेतों में कोई फ़सल भी खड़ी नज़र आ जाती थी। मैं कुछ परेशान सा हो गया, यों ही अंधाधुंध चलता गया। एकाएक मुझे दूर से गर्द उड़ती हुई दिखाई दी। मैं ठिठक कर रुक गया।

थोड़ी देर बाद मालूम हुआ कि कोई तिर्छा-बाँका साँडिनी सवार चला जा रहा है। सुनसान जगह, फीकी चाँदनी, भींगुरों का शोर...पहले ख़याल आया कि इसे आवाज़ देकर रास्ता पूछ लूँ, लेकिन उसकी वेश-भूषा कुछ ऐसी थी कि मैंने उसे बुलाना उचित न समझा, बल्कि सोच में पड़ गया कि न जाने यह कौन है, काश! वह मुझे देखे बिना आगे निकल जाय। मैं सिमटकर कीकर के एक छोटे से पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ, लेकिन उस पेड़ की छाया में भी आदमी किसी की नज़रों से ओझल नहीं रह सकता था।......उसके हाथ में एक लम्बे हत्थे की कुल्हाड़ी देखकर और भी दम सूख गया।

वह अपने रास्ते पर चला जा रहा था। मेरी तबीयत कुछ सँभलने लगी।...एकाएक उसने रुख बदला और मेरी ओर मुड़ा। मैंने सोचा

शायद वह इस रास्ते से सीधा आगे को चला जायगा; अतएव मैं ज़रा पहलू बदलकर खड़ा हो गया। लेकिन वह सीधा मेरी ओर आया और पास पहुँच कर उसने साँडिनी रोक ली। मैंने उसकी ओर देखा। ऐसा लगता था जैसे ऊँट के ऊपर एक और ऊँट बैठा हुआ है। वह एक लम्बा तड़गा इकहरे शरीर का मज़बूत सिक्ख था। अंडाकार चेहरा, दाढ़ी छोटी-छोटी और छिदरी सी, भवें घनी, नाक जैसे बतख की चोंच, नथने फूले हुए, आँखें अंदर को धँसी हुई किन्तु चमकदार, ठोड़ी ठीक बीच में से दबी हुई, कानों में सुनहरे बाले और गले में सोने का चमकता हुआ कंठा।

वह थोड़ी देर तक मुँह खोले मेरी ओर देखता रहा। फिर उसने बैठी हुई आवाज़ में पूछा—"कहो भाई लौंडे, कौन हो तुम ?"

मेरा मन डूब गया। "जी, मैं गाँव को जा रहा हूँ।"

"कहाँ से आ रहे हो ?"

"शहर से।"

"शहर से आ रहे हो ?"

"जी......शहर से।"

"क्या करते हो वहाँ ?"

"जी, पढ़ता हूँ।"

"क्या पढ़ते हो ?"

मैं इस सवाल पर चकराया—"किताबें पढ़ता हूँ जी।"

उसने सायकिल के पीछे बँधी हुई गठरी को कुल्हाड़ी के हत्थे से खोदते हुए पूछा—"इसमें क्या है ?"

"जी, इसमें मैले कपड़े हैं......क्या जी, खोलकर दिखाऊँ ?"

वह हँस पड़ा—"रहने दो।"

मेरी जान में जान आई। उसने साँडिनी की नकेल खींची और चलने ही लगा था कि फिर रुक गया—"कहाँ जा रहे हो ?"

"जी, अपने गाँव को।"

"कौन गाँव ?"

"जी, अकालगढ़ ।"

"अकालगढ़ ?"

"जी !"

वह थोड़ा रुका, फिर अपने कल्लों के नीचे ज़बान फेरते हुए बोला—"इधर आओ ।"

मैं डरते-डरते उसके पास गया ।

उसने कहा—"सायकिल नीचे रख दो ।"

मैंने सायकिल ज़मीन पर डाल दी। उसने हाथ बढ़ा कर कहा—"मेरा हाथ पकड़ कर मेरे पीछे बैठ जाओ ।"

मैं डरा, लेकिन इसके सिवा कोई रास्ता न था। बड़ी मुश्किल से उसके पीछे अड़कर बैठ गया। उसने ऊपर बैठे-बैठे कुल्हाड़ी में सायकिल अड़ाकर ऊपर खींच ली, नकेल को झटका दिया और साँडिनी अपनी बेढंगी चाल से रवाना हो गई।

मैंने उसकी पसीने में तर गरदन पर नज़र जमा दी। उसके सर के बाल इतने खींचकर बँधे हुए थे कि उसकी गुद्दी पर बालों की जड़ों का माँस ऊपर उभड़ आया था, जैसे नन्हीं-नन्हीं फुन्सियाँ निकल आई हों। उसने फिर अपनी बैठी हुई भारी आवाज़ में पूछा—"तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारा गाँव किधर को है, क्या तुम समझते हो कि अब तुम अपने गाँव ही को जा रहे थे ?"

"जी, मैं रास्ता भूल गया था। मैं पहले शहर से सिर्फ़ दो बार ही आया हूँ, लेकिन दिन ही दिन में घर पहुँच जाता था। लेकिन आज रात हो गई और फिर रास्ते में पानी भी खड़ा था, इसलिए मुझे रास्ते का पता ही नहीं चला।"

इस पर उसने अपने निर्भीक स्वर में ठहाका लगाया। फिर बोला—"लड़के, अगर तुम रात भर भी इस तरह चलते रहते तो भी अपने गांव न पहुंच पाते......। तुम्हारे जैसे छोटे लड़कों को रात के वक्त सुनसान जगहों में कभी भी घूमना न चाहिए।"

इसके बाद धीरे-धीरे वह खूब मज़े की बातें करने लगा। पहले तो मैं मन ही मन बहुत डरा। मैंने सुना था कि कुछ लोग लड़कों के सिरों में से मोमियायी निकाल लिया करते हैं, सिर मूँडकर चोटी में एक कील ठोक देते हैं और टांगें बांधकर पेड़ से लटकाकर सिर के नीचे आग जलाकर एक कड़ाई रख देते हैं। आग की गर्मी से सिर की चर्बी पिघल जाती है और मोमियायी कील के सिरे से बूँद-बूँद करके कड़ाई में टपकती रहती है। यहाँ तक कि सिर की सारी मोमियायी निकल जाती है और लड़का मर जाता है......। सॉंडिनी सवार की आकृति तो अवश्य ही बड़ी भयानक थी, किन्तु उसकी बातों से किसी प्रकार के खतरे की गंध न आती थी। वह बड़ा हँसमुख, खुश मिज़ाज आदमी था।

कहने लगा कि तुम्हारे घर में किसी ने दिन के समय कहानी कही होगी, तभी तो तुम रास्ता भूल गये।

मैं सॉंडिनी के कोहान से फिसला जाता था, इसलिए मैं उसकी कमर से लिपट गया। उसकी गाढ़े की कमीज़ पसीने में तर हो रही थी। बग़लों से हलकी-हलकी गंध भी आ रही थी। बग़लों के घने बाल पसीने में तर होकर चिपक गये थे। उसके जूड़े पर बँधी हुई जाली के नीचे लटकते हुए फुँदने मेरे नथुनों और आँखों में घुसे जाते थे। मुझे पहले कभी ऊँट की सवारी करने का संयोग न हुआ था। इतनी कष्टदायक सवारी थी कि बदन का जोड़-जोड़ दुखने लगा, और वह मेरी तकलीफ़ से बेख़बर अंधाधुंध सॉंडिनी दौड़ाये चला जा रहा था। वह बड़ा बातूनी आदमी था। उसकी भारी-भरकम आवाज़ और भरपूर ठहाकों से वायुमंडल गूँज रहा था।

हम एक ऐसे पेड़ के पास से गुज़रे, जिस पर बयों के घोंसले लटक रहे थे। एक घोंसला तो मेरे इतने करीब था कि मैंने उसे खसोट लेने के लिए हाथ बढ़ा दिया। लेकिन घोंसला मेरी पहुँच से बाहर रहा। वह कहने लगा—"बया बड़ा समझदार पक्षी होता है। वह अपना घोंसला बड़ी मेहनत और कारीगरी से बनाता है। दुनिया में कोई पक्षी इतना सुन्दर घोंसला नहीं बना सकता। तुमने बाँसों पर लटकते हुए घोंसले नहीं देखे? बेहद ख़ूब-सूरत होते हैं—हवा में लहराती हुई टोपियों सी। बये फुदक कर कभी अन्दर चले जाते हैं, कभी बाहर आ जाते हैं। वे एक प्रकार का घोंसला और भी बनाते हैं। यानी एक तो अपने रहने के लिए, नर्म तिनकों और पत्तों से जिसमें एक तरफ़ को अंदर जाने का रास्ता होता है, और दूसरा घोंसला झूले की शकल का होता है। जब बादल घिर-घिर कर आते हैं और हल्की-हल्की फुहार पड़ती है, ठंडी हवा के झोंके चलते हैं तो बये चहचहाते हुए इन पंगोड़े जैसे घोंसलों पर पंजे जमाये झूला झूलते हैं।"

मुझे उसकी बातें बहुत दिलचस्प मालूम हुईं। मैंने कहा—"सुना है बये अपने घोंसले में रोशनी करने के लिए जुगनू पकड़ कर घोंसले के अन्दर तिनकों में उड़स देते हैं।"

उसने सिर हिलाकर मुझे विश्वास दिलाते हुए कहा—"हाँ, यह ठीक है, यह बहुत ही सियाना पक्षी है।"

इस पर मैंने उसे बंदर और बये की कहानी सुनाई जो मैंने तीसरी कक्षा में उर्दू की किताब में पढ़ी थी। उसने बच्चों की तरह ध्यान लगाकर वह कहानी सुनी। और जब मैंने कहानी का नतीजा बताया तो वह बहुत ख़ुश हुआ।

इस तरह बंदर से दूसरे जानवरों की चर्चा चल पड़ी। मैंने बताया कि जब मैं सड़क पर सायकिल चलाता हुआ चला आ रहा था तो किस

से उसको घूर रहे हैं...उसे महसूस हुआ कि अब वह बचकर नहीं निकल सकता। उसने पेड़ की तरफ़ देखा तो उसका तना इतना चिकना था कि उस पर फ़ुर्ती से चढ़ना असंभव था। वह यह नहीं जानता था कि वह उस पर चढ़ने की कोशिश करेगा तो भेड़िये उस पर झपट पड़ेंगे... क्षण प्रतिक्षण भेड़िये उसके निकट चले आ रहे थे। वे उसे चारों तरफ़ से घेरे हुए थे और धीरे-धीरे वे अपने घेरे को तंग किये जा रहे थे। समय बहुत कम था, उसने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, न कोई साथी, न हथियार...संयोगवश पास ही दो-चार ईंटें दिखाई पड़ीं। मालूम होता था कि कभी किसी आदमी ने उस जगह ईंटों का चूल्हा बनाकर रोटी बनाई थी.. उसने अपनी खद्दर की मोटी चादर को दोहरा करके फ़ुरती से एक ईंट उसके अंदर रखकर बाँध दी। अभी उसके सिरे हाथों में थामे ही थे कि सब भेड़िये एकदम उस पर पिल पड़े। उसने चादर में बँधी हुई ईंटों को ज़ोर-ज़ोर से घुमाना शुरू कर दिया। जो भेड़िया उसके पास आता उसकी थूथनी पर इस ज़ोर से ईंट लगती कि वह घबरा कर पीछे हट जाता। भेड़िये बढ़-बढ़कर हमले करते रहे। वह भी बड़ी फ़ुर्ती और तेज़ी के साथ ईंट घुमाता रहा। इस तरह क़रीब आध घन्टा तक वह भेड़िये के हमलों को असफल बनाता रहा...यहाँ तक कि वहाँ कुछ और राहगीर भी आ पहुँचे। उन्होंने दूर ही से ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। भेड़िये यह शोर सुनकर भाग निकले और उस आदमी की जान बच गई।"

यह रोमाँचकारी कहानी सुनाकर वह साँडिनी को गालियाँ देने लगा और मैं अपने विचारों में खो गया।...पीले चाँद की फीकी चाँदिनी में दूर-दूर तक काले-काले पेड़ फैले हुए दिखाई दे रहे थे। कहीं बहुत दूर से किसी के गाने की उड़ती हुई तान सुनाई देने लगी। साँडनी अपनी बेढंगी चाल से लपकी हुई चली जा रही थी। हम एक ऊँचे पेड़ के पास से होकर गुज़रे जिस पर सूखी लौकियाँ लटक रही थीं। उसने कुल्हाड़ी

के हत्थे से एक तौरी को ठुकराकर कहा—"देखो यह है तौंबी। बचपन में जब हम लोग नहर पर नहाने जाया करते थे तो बस इस तरह की तौंबी बग़ल में लेकर मज़े से बोतल के काग की तरह तैरा करते थे।"

लेकिन मेरा ध्यान अभी तक भेड़ियों की ओर लगा हुआ था—"क्या भेड़िये बड़े आदमी पर भी हमला कर देते हैं?"—मैंने पूछा।

उसने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"अगर भेड़िये गिनती में अधिक हों और कोई अकेला-दुकेला आदमी मिल जाय तो वे उस पर हमला कर दिया करते हैं। लेकिन आमतौर से आदमियों से डरते हैं...लो मैं तुम्हें एक मज़ेदार क़िस्सा सुनाता हूँ...यह जगबीती नहीं, आपबीती है...करीब चार बरस पहले की बात है—मैं अपने ननिहाल को जा रहा था। रास्ते में जंगल पड़ता था, लेकिन मुझे परवाह न थी। मेरे हाथ में एक बड़ी लम्बी लाठी थी जिसके नीचे लोहे की यह मोटी शाम लगी हुई थी। अगर उस लाठी की एक भी ठिकाने की चोट किसी भेड़िये के सिर पर पड़ जाती तो वह वहीं ढेर हो जाता। ख़ैर दोपहर का समय था। अभी मैं जंगल में थोड़ी ही दूर गया था कि मैंने चौंककर देखा कि मेरे दाहिने हाथ की तरफ़ कोई जानवर झाड़ियों में छिपा हुआ है। मैंने जल्दी से चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई तो देखा की बायें हाथ की तरफ़ झाड़ी के पीछे एक भेड़िया खड़ा है...मैं चौकन्ना होकर रास्ता तय करने लगा। जिस जगह झाड़ियाँ ज़रा कम होतीं, मैं देखता कि मेरे दायें-बायें दो भेड़िये तीस-तीस चालीस-चालीस क़दम का फ़ासला देकर चले जा रहे हैं। मैंने लठ उठाकर कंधे पर रख लिया और उन पर निगाह रखता हुआ बढ़ता चला गया। कभी वे मेरे क़रीब आ जाते और कभी फिर दूर चले जाते। जब हम घनी झाड़ियों में से होकर गुज़रते तो वे नज़रों से ओझल हो जाते। मुझे उस वक्त खतरा महसूस होता था कि कहीं हमला न कर दें। और हाँ...एक अजीब बात देखी, कभी दायें हाथ वाला भेड़िया बायें हाथ की तरफ़ चला आता और बायें हाथ वाला दायें हाथ की तरफ़

चला जाता। इस तरह वे रास्ते भर अदल-बदल करते रहे। यहाँ तक कि जंगल खतम हो गया, लेकिन उनको मुझ पर हमला करने का साहस नहीं हुआ। जंगल खतम होने पर मैं तो आगे बढ़ गया और वे जंगल ही में रह गये।"

जब वह अपना किस्सा खतम कर चुका तो मैंने उस पर सवालों की बौछार कर दी। अब वह मुझे बहुत ही दिलचस्प आदमी मालूम होने लगा था। उसका बात करने का ढंग इतना दोस्ताना था और बातें ऐसी सनसनी पैदा करने वाली और मज़े-मजे की करता था कि जी चाहता था, वह बातें ही करता चला जाय। मैंने आग्रह किया कि मुझे भेड़ियों की कोई और कहानी सुनाओ। वहाँ कहानियों की क्या कमी थी। उसने कहा—"अब मैं तुम्हें अपने परनाना का छोटा-सा किस्सा सुनाता हूँ—परनाना यानी मेरे नाना के बाप अपने समय में बहुत ही शक्तिशाली आदमी समझे जाते थे। इलाक़े भर के लोग उनसे थर-थर काँपते थे। एक बार मेरे परनाना अपनी बुआ से मिलने के लिए गये। वहाँ उन्हें कुछ काम था। डेढ़-दो महीने वहीं रहे। उन्हें खबर मिली कि घर पर मेरे नाना जो उस समय बच्चे ही थे, बीमार पड़ गये हैं। खबर मिलते ही परनाना तुरन्त अपने घर की तरफ़ रवाना हो गये। जल्दी में उन्होंने अपने हाथ में लाठी तक न ली। बीस-पच्चीस मील का फ़ासला था। वे बड़ी तेज़ी से चलते थे। उस समय चूँकि अपने बेटे की बीमारी की चिंता थी, इसलिए उनकी यही कोशिश थी कि वे जल्दी से जल्दी अपने गाँव पहुँच जायें। आधा रास्ता तय करने के बाद वे एक गाँव के पास से होकर गुज़रे तो उस गाँव के लोगों ने उनसे कहा कि वे जिस रास्ते से जा रहे हैं, उधर से न जायें बल्कि दूसरे रास्ते से चले जायें। दूसरे रास्ते से बहुत बड़ा चक्कर पड़ता था, इसलिए परनाना उस रास्ते से जाना नहीं चाहते थे। उन्होंने कारण पूछा तो लोगों ने बताया कि इस रास्ते पर एक भेड़नी ने बच्चे दे रक्खे थे। जो आदमी उधर से गुज़रता था, वह

उस पर हमला कर देती थी। चूँकि दूसरा रास्ता बहुत लम्बा था और उन्हें जल्दी पहुँचना था, इसलिए उन्होंने लोगों के कहने की परवाह न की और सीधे रास्ते से जाने की ही ठान ली। जब कोई एक डेढ़ मील आगे निकल गये तो देखा कि ठीक रास्ते के बीच में एक बिगड़ी हुई भेड़नी बैठी है। वे थोड़ा सा रास्ता काट कर गुज़रने लगे तो उसने उन पर हमला कर दिया। उन्होंने झपट कर उसके जबड़ों के पिछले हिस्से में, जहाँ दाँत नहीं होते, दोनों हाथ डाल कर उसका मुँह फाड़ देने की कोशिश की। उधर वह झुँझलाई। लेकिन ज़िन्दगी और मौत का सवाल था। उन्होंने ख़ूँख़ार जानवर को टाँगों में जकड़कर ज़ोर लगाया और उसका मुँह फाड़ डाला। वह बहुत तड़पी, पर उन्होंने एक बड़ी सी ईंट से उसका बिलकुल ख़ातमा कर दिया...।"

मुझे इस क़िस्से में बहुत मज़ा आया। इस तरह हम बातें करते हुए चले जा रहे थे। पर अब मैं कुछ थक गया था, शरीर भी दुखने लगा था। दूर से पेड़ के झुँडों में से रोशनी छन-छनकर निकलती दिखाई दी। जब हम और करीब पहुँचे तो बाजों और ढोल का हल्का-हल्का शोर भी सुनाई देने लगा। इस वीराने में यह रौनक़!......पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ मेला लगा हुआ है। यह बड़ा मेला सात दिन तक बराबर लगता था। बड़ी-बड़ी दूकानें और भाँति-भाँति के खेल तमाशे आते थे। मैंने पूछा—"क्या अब मेले में चलना होगा?"

"हाँ, मुझे वहाँ एक...से मिलना है। और उस मेले का मतलब ही क्या है जहाँ मेल न हो सके......क्या समझे?"

मैं कुछ न समझा।

अब हम एक चौड़े रेतीले रास्ते पर हो लिए। उस रास्ते के दोनों किनारे ऊपर को उठे हुए थे। और उन किनारों पर बबूल के ऊँचे-ऊँचे पेड़ मेले के स्थान तक चले गये थे।

जब हम क़रीब पहुँचे तो काले-काले पेड़ों के तनों के बीच में गैस के हंडे और खीमे दिखाई पड़ने लगे। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गये, वैसे-वैसे ज़्यादा रौनक़ दिखाई देने लगी। हलवाइयों, बिसातियों, कुम्हारों, खिलौने और शर्बत-फ़ालूदे वालों की दूकानें, एक तरफ़ ऊपर नीचे घूमने वाले पगोड़े और दूसरी ओर हाथों पर नाम या फूल आदि गोदने वालों के अड्डे, घोड़े, गधे, ताँगे, ठेले, बैल और ऊँट भी नज़र आने लगे। उस समय ख़ूब धमा-धमी हो रही थी। पुरुषों और स्त्रियों के झुंड के झुंड घूम रहे थे। रोशनी और गाने-बजाने के कारण जंगल में मंगल हो रहा था।

मेले में पहुँच कर एक पेड़ के नीचे मेरे साथी ने साँडिनी को ज़मीन पर बैठा दिया। मैं उतरा तो मेरी टाँगें सुन्न हो गई थीं। मैं खड़ा न रह सका, इसलिए तुरंत ज़मीन ही पर बैठ गया। वह मेरी तरफ़ देखकर दाँत निकालकर हँसा "—क्यों, बस थक गये?"

मैं कुछ झेंप सा गया, लेकिन वास्तव में उस समय मेरे शरीर के जोड़-जोड़ में पीड़ा हो रही थी।

उसने पूछा—"तुम्हें भूक तो लगी होगी ख़ूब ज़ोर की?"

मेरे एक़रार पर वह मुझे अपने साथ लेकर हलवाई की सबसे बड़ी दूकान पर पहुँचा। कड़ाव आग पर चढ़े हुए थे। गर्म-गर्म जलेबियाँ उतर रही थीं। पहले तो उसने मुझे गर्म-गर्म जलेबियाँ दिलवाईं। मुझे भूक भी लगी थी। उस दिन जलेबियाँ खाने में बड़ा आनन्द आया। उसने मेरी पीठ पर थपकी देकर कहा—"बस, अब तुम जो जी चाहे खाओ ख़ूब पेट भर कर, समझे?"

मुझे दूकान पर छोड़कर वह स्वयं एक तरफ़ को चल दिया। मैंने जो जी चाहा खाया। जब खा चुका तो हलवाई के नौजवान लड़के ने दाम माँगे। मैं बड़ा घबराया। मैंने इधर-उधर देखा। मेरा साथी कहीं दिखाई न पड़ता था। मुझे प्यास भी लग रही थी, लेकिन अब मैं ख़ूब

फँसा। मैंने हलवाई से कह दिया कि मेरे पास दाम नहीं है। इस पर नौजवान हलवाई ने कहा—"कुर्सी पर बैठे रहो। जब तक पैसे नहीं दोगे, यहाँ से हरगिज़ नहीं जाने दूँगा।" मैं बहुत परेशान हुआ। थोड़ी देर बाद हलवाई फिर बकवास करने लगा। मैं डरा कि कहीं दो-चार चपत ही न जमा दे......। इतने में बत्तख की चोंच की सी नाक वाला मेरा साथी भी लंबे-लंबे डग भरता आ पहुँचा। उसे आते देखकर मेरी जान में जान आई। उस समय हलवाई का लड़का मुझे खरी-खरी सुना रहा था। मेरे साथी ने आते ही बड़ी ज़ोरदार आवाज़ में उसे ललकार कर कहा—"अबे ओ हरामी के पिल्ले!......क्या कहता है हमारे छोकरे को?"

फिर उसने आगे बढ़कर उसका टेटुआ दबा लिया और बोला—"बेटा मेरा नाम जस्सासिंह है, जस्सासिंह......।"

शोर सुनकर लड़के का बाप हाथ जोड़कर दूकान से नीचे उतर आया और जस्सासिंह के सामने रोनी सूरत बनाकर खड़ा हो गया।

"लाला जानते हो मैं कौन हूँ......?"

लाला हाँफ रहा था, मटके की तरह फूला हुआ उसका पेट नीचे-ऊपर हो रहा था,—"जी, अन्नदाता, जानता हूँ।"

जस्सासिंह ने उसके जवान लड़के को गर्दन से पकड़ कर इस ज़ोर से पीछे ढकेल दिया कि वह गर्म-गर्म घी के कढ़ाव में गिरने से बाल-बाल बचा—"तो फिर अपने इस लौंडे को भी बता दो। कहीं मुझे इसका भुरकस न निकालना पड़े......क्यों बे हरामी, तुझे इतनी हिम्मत कैसे हुई कि तू हमारे लड़के पर पैसे लेने के लिए चढ़ दौड़ा......।" वह लाल आँखें निकाले लाला की तरफ़ बढ़ रहा था। इधर-उधर के लोग भी जमा हो गये। लाला ने कद्दू सा सिर हिलाते हुए कहा—"जी, मैंने पैसे नहीं माँगे......अजी, मुझे तो मालूम भी नहीं हुआ कि इस हरामज़ादे ने कब पैसे माँगने शुरू कर दिये?"

जस्सासिंह ने कहा—"खून पी लूँगा खून...यहाँ अंगरेज़ का राज नहीं, मेरा राज है...कहो तो दूकान बराबर कर दूँ सुबह तक।"

इतने में एक और लम्बा-तगड़ा मुसलमान नौजवान आगे बढ़ा—"अबे जाने दे यार, ग़लती हो गई बेचारे से।"

जस्सासिंह ने घूमकर देखा तो उसकी बाछें खिल गईं। दोनों लिपट गये। शायद बहुत दिनों बाद दोनों दोस्तों का मिलाप हुआ था। नवागन्तुक भी खूँख्वार गिद्ध के समान दिखाई पड़ता था।

हलवाई को इतनी चेतावनी काफ़ी समझी गई। इसके बाद हम लोग मेले में घूमने लगे। वे दोनों बहुत देर तक मुक़दमों, पुलीस और थाने आदि की बातें करते रहे।

मेले से ज़रा हटकर एक जगह खुले खेत में अलगोजे बज रहे थे। लोग एक बड़े घेरे में बैठे थे। हुक़्क़े का दौर चल रहा था। कुछ लोग लाठियाँ बग़लों में दबाये उनके सहारे खड़े थे। कुछ लोग लाठियों पर ठुड्डियाँ टिकाये उचके हुए खड़े थे। अलगोजे बजाने वाले के पास एक गबरू हाथ कान पर धरे बड़े मज़े में पूरन भक्त का क़िस्सा गा-गाकर सुना रहा था। सारी महफ़िल पर सन्नाटा छाया हुआ था। सिर्फ़ गाने वाले की दर्द में डूब-डूबकर उभर आने वाली आवाज़ हवा में गूँज रही थी। जब गानेवाला एक बोल कहकर चुप हो जाता तो अलगोज़ों की लचकती हुई आकर्षक आवाज़ दो बोलों के बीच के अंतर को और भी मनोहर बना देती।

एक जगह बहुत भीड़ थी, खूब हुल्लड़ मचा हुआ था। जब हम पास पहुँचे तो देखा कि लोगों ने एक रंगीन मिज़ाज बूढ़े को घेरे में ले रक्खा है। बूढ़े की सफ़ेद दाढ़ी और लम्बे-लम्बे पट्टे हवा में उड़ रहे थे। पहले वह एक लम्बी-सी हाँक लगा कर बड़ी लय के साथ कोई नंगी-सी बोली सुनाता। लोग ठहाके लगाते और वह हाथ उठाकर चुटकियाँ बजाता और कोहनियाँ हिलाते हुआ उछल-उछलकर नाचता था। उसके मुँह में एक दाँत तक न था, लेकिन आँखों में बला की चमक थी। फिर उसने

बड़ी चंचल नज़रों से दर्शकों की ओर देखा और उच्च-स्वर में पुकार कर बोला—

"ओय—नाले बाबा खीर खा गया।
नाले दे गया दुअन्नी खोटी।
हो हो!"

"बुल्ले ओय बाबया" चारों ओर से प्रशंसा की आवाज़ें उठने लगीं।

हम इसी तरह घूमते फिरते जा रहे थे। जस्सासिंह और उसका मित्र बाज़ों की भाँति आगे को झुक-झुककर तालियाँ बजाते हुए ठहाके लगा रहे थे। मैं उसकी लम्बी-लम्बी टाँगों पर नज़र रखता हुआ उनके साथ-साथ था। इतने में जस्सासिंह ने मुझे संबोधित कर कहा—

"काका...क्या नाम है तुम्हारा...?"

मैं 'बकरीसिंह', कहने ही को था कि एकाएक रुक गया। नहीं तो मेरा खूब मज़ाक उड़ाया जाता। मैंने सँभलकर अपना असली नाम बता दिया।

"तुमने कभी ऊँटनी का दूध पिया है ..आहा! बहुत मीठा होता है। आओ तुम्हें ऐसा दूध पिलायें कि बस याद ही किया करो।"

हम मेले से ज़रा परे हट आये। एक जगह बहुत-सी ऊँटनियाँ बँधी हुई थीं। इधर-उधर खुले मैदान में चारपाइयाँ बिछी हुई थीं और उन पर मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए आदमी बैठे दिखाई दे रहे थे। रोशनी की कमी के कारण उनके चेहरे साफ़ तौर पर दिखाई न पड़ते थे। हम भी एक चारपाई पर जा बैठे। जस्सासिंह ने अपने सामने दूध दुहाया और फिर तीन टंडें (मिट्टी का छोटा डोल) दूध की भरी हुई लाया। वे दोनों तो अपनी-अपनी टंडें एक ही साँस में चढ़ा गये लेकिन मैं बहुत प्यासा होते हुए भी तीन-साढ़े तीन सेर की टंड न पी सका। अतएव जस्सासिंह मेरी टंड का दूध भी पी गया। वहाँ से उठकर हम फिर मेले

में वापस चले आये। हम बहुत देर तक घूम चुके थे। आस-पास के देहात से आई हुई स्त्रियाँ भी वापस जा रही थीं। यद्यपि अब रौनक़ काफ़ी थी, लेकिन जहाँ तक स्त्रिया का सम्बन्ध था, महफ़िल पहले की अपेक्षा कुछ ठंडी पड़ चुकी थी।

एक तरफ़ मुजरे की तैयारियाँ हो रही थीं, एक सफ़ेद दाढ़ी वाले बुज़ुर्ग काले कपड़े पहने तख्त पर बैठे थे। दाँतों में हुक्के की नली दबी थी। इधर-उधर भक्तों का जमघट था। कुछ नौजवान औरतें बनाव-सिंगार करने के बाद पाँव में घुँघरू बाँध रही थीं। तबले पर आटा मला जा रहा था। थोड़ी थोड़ी देर बाद थप थप-थाप की आवाज़ें सुनाई दे जाती थीं। एक तरफ़ सारंगिये बैठे सारंगी के कान मरोड़ रहे थे। इधर उनके हाथों में पकड़े हुए गज हिलते और उधर उनके बड़े-बड़े पग्गड़ों वाले सर भी एक साथ हरकत करते। सब लोगों की निगाहें उन औरतों पर जमी हुई थीं, जो बल खा-खाकर सौ-सौ तरह से अपने पाँव की तरफ़ देखती थीं। ये अच्छी तरह जानती थीं कि काले कपड़ों वाले बूढ़े पीर की सुर्मा लगी आँखों से लेकर साधारण से साधारण व्यक्ति की आँखों तक सब उन्हीं के दर्शनों के लिए व्याकुल थे।

जस्सासिंह के दोस्त ने मुजरा देखने की इच्छा प्रगट की। जस्सासिंह का भी विचार तो यही था, लेकिन शायद मेरे ख़याल से उसने वहाँ देर तक रुकना उचित नहीं समझा। इसलिए वह अपने दोस्त से विदा हुआ और हम लोग अपनी साँडिनी की नकेल पकड़कर मेले से चल निकले।

जब हम मेले से बाहर आ गये तो सामने फिर घनी-घनी झाड़ियाँ और ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। हमारे दायें बायें अब भी कोई इक्का-दुक्का खेमा नज़र आ ही जाता था। थोड़ी दूर जाने के बाद जस्सासिंह रुक गया। उसने मुझे वहीं ठहराया और साँडिनी की नकेल मेरे हाथ में देकर स्वयं उस रेतीले रास्ते के ऊँचे किनारे की ओर रुख करके तुन के एक और पेड़ के पास पहुँचा।

वह पेड़ के नीचे जाकर खड़ा ही हुआ था कि पेड़ के साये में एक नौजवान औरत तने की ओट में से बाहर निकली। वे दोनों हँस पड़े और बहुत धीरे-धीरे बातें करने लगे।

मद्धिम प्रकाश में उस स्त्री की सूरत साफ़-साफ़ नहीं दिखाई पड़ती थी। हाँ, जब वह बातें करती हुई अपनी जगह से एक ओर को हट जाती तो चन्द्रमा के प्रकाश में उसका चेहरा साफ़-साफ़ दिखाई पड़ने लगता।

वह एक ख़ूब पली हुई जंगली बिल्ली के समान थी। उसके चलने का ढंग भी उस मोटी-ताज़ी बिल्ली की भाँति था जो पेट भर कर चूहे खा लेने के बाद खर-खर करती हुई चलती हो। ख़ूब खिंची तनी हुई ठसाठस माँस का वह एक तड़पता हुआ टुकड़ा थी, जैसे खरबूज़े की फाँक या मीठे सन्तरे की रस भरी फाँक। उसने गहरे नीले रंग की ओढ़नी ओढ़ रक्खी थी, जिसमें केवल उसका चेहरा ही नज़र आता था। यदि उसके स्वस्थ गालों पर इतना माँस न होता तो उसकी आँखें ख़ूब बड़ी-बड़ी दिखाई देतीं। भवें लचकती कटार थीं और दाँत साफ़ और स्वच्छ। अखरोट के वृक्ष की छाल से रंगे हुए मसूड़ों में से हँसते समय उसके दाँतों की चमक बिजली की भाँति कौंध जाती थी। उसके होंठों में समुद्र की लहरों का सा ज्वार-भाटा पैदा होता और वे गर्म रेत पर पड़ी हुई किसी मछली की भाँति तड़पने लगते थे।

वे दोनों मुझसे कुछ फ़ासले पर तो थे ही, फिर वे बातें भी बहुत धीरे-धीरे कर रहे थे। कम से कम मेरे कान में कुछ नहीं पड़ने देते थे, लेकिन औरत के होंठों के उतार-चढाव से मालूम होता था कि बातें शायद कभी न ख़त्म करने के लिए हो रही हैं।...कभी चंचल दृष्टि से उसकी ओर देखकर ठेंगा दिखाने के अंदाज़ में ऊपर वाला होंठ भींचकर नीचे का होंठ आगे बढ़ा देती।...उसने अपनी चुंदरी को सँवारा तो उसके काले घने और लम्बे केश वर्षा की बौछार की भाँति बाहर निकल पड़े। उसकी सुन्दर गर्दन की झलक भी क्षण भर को दिखाई पड़ी और फिर, उसकी

ओढ़नी की बदली में छिप गई। वह मस्ती में भरी हुई कबूतरी के समान अठखेलियाँ कर रही थी। जस्सासिंह ने संभवतः उसकी ठोड़ी ऊपर उठाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। औरत ने नर्मी से उसका हाथ रास्ते में ही रोक दिया और बड़े बाँकपन से ठुमककर अपने को जस्सासिंह को सौंपने के अंदाज़ में उसके क़रीब हो गई और उसके कान के पास धीरे से कुछ कहा। जस्सासिंह ने मेरी ओर देखा और खिलखिला कर हँस पड़ा।...फिर जस्सासिंह एक क़दम पीछे हट गया।

पत्तों में से छन-छन कर आने वाली चाँदनी में औरत की तेज़ आँखों में से प्रकाश की किरणें निकलती हुई दिखाई दे रही थीं......और जब जस्सासिंह वापस लौटा तो वह पेड़ के तने के साथ लग कर खड़ी हो गई और कुछ उदास निगाहों से जस्सासिंह की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगी। उसका एक गाल पेड़ से लगा हुआ था।

हम फिर साँडिनी पर सवार हो गये और साँडिनी पहले की तरह बेढब चाल से भाग निकली। काफ़ी दूर आ जाने के बाद मैंने घूमकर पीछे की तरफ़ देखा। वह औरत अभी तक उसी तरह पेड़ के तने के साथ सिमट कर खड़ी हुई थी।

जब हम खेतों में पहुँच गये तो जस्सासिंह ने अपना बटुये जैसा मुँह खोल कर मेरी ओर देखा और नाक की जगह मुँह से साँस लेने लगा। उसकी छोटी-मोटी मूछों के तले उसके कुछ मोटे होंठों पर चंचल मुस्कराहट खेल रही थी। वह अपनी भारी आवाज़ में बोला—"क्या सोच रहे हो?"

मैं कुछ झेंप सा गया।

साँडिनी निचला होंठ आगे को बढ़ाये किसी रूठी रानी की तरह ठुमक-ठुमककर चली जा रही थी। जस्सासिंह ने लोहे के कड़े वाला हाथ उठाकर कान पर रख लिया और एक लम्बी हाँक लगाई। उसके मुँह में से फेफड़ों की पूरी शक्ति के साथ जीवन से भरपूर आवाज़ निकली जो

वायुमंडल में फिसलती चली गई। इतनी स्वतंत्र और भरपूर आवाज़ मैंने कभी नहीं सुनी थी। उसके स्वर में संगीत न सही, लेकिन एक ऐसा करारापन और एक ऐसी सच्चाई थी जिस पर संगीत से भरपूर हज़ारों आवाज़ें क़ुर्बान की जा सकती थीं। लम्बी हॉक के बाद वह गाने लगा—

"ओय
मैं मल लाँ तख्त लाहौर दा[1]
मैं खोह लाँ राजे देयाँ रानियाँ[2]।
ओय...हो हो।"

फिर उसने उच्च स्वर में ठहाका लगाया—"लो मैं तुम्हें एक और गाना सुनाता हूँ। बहुत मज़े का गीत है। एक औरत जिसका नाम भागिन है, अपने......यानी समझे न! उससे पूछती है—

"हैं वे कित्थे चल्ले ओ
हाकिमा तुसी, तुसी वे कित्थे चल्ले ओ[3]।"
अब हाकिम जवाब देता है—
"हे नी दिल्ली चल्ले आँ
भागिनें! इसी, इसी नी दिल्ली चल्ले आँ[4]।
इस पर भागिन के मन में लड्डू फूटने लगते हैं। कहती है—
हैं दे की ल्या दोगे
हाकिमा! तुसी, तुसी दे की ल्या दोगे[5]।

भला हाकिम भागिन के लिए कुछ लाने से कब चूक सकता था। लेकिन इस मौक़े पर उसे शरारत सूझती है। वह असल उपहार का ज़िक्र तो करता नहीं बल्कि कहता है—

१. मैं लाहौर के तख्त पर जम जाऊँ। २. मैं राजे की रानियाँ छीन लूँ। ३. हाँ यह हाकिम कहाँ चले हो तुम, तुम कहाँ चले हो। ४. अरी भागिन हम दिल्ली चले हैं। ५. हाँ तो फिर दिल्ली से तुम क्या लाओगे।

हैं नी ! बिल्ली ल्या दाँगे ।

भागिनें ! असी, नी बिल्ली ल्या दाँगे[1] ।'

बिल्ली का नाम सुनकर भागिन का जी कट जाता है । तेवर बिगड़ जाते हैं । पूछती है—

बिल्ली की कर जेगी

हाकिमा ! बिल्ली, बिल्ली दे की कर जेगी[2] ।'

हाकिम कनखियों से भागिन की तरफ़ देखता है । उसके बिगड़ने का आनन्द लेता है ।

हैं नी नहोन्दर मारेगी

भागिनें ! बिल्ली, बिल्ली नहोन्दर मारेगी[3] ।

भागिन इस बात पर दिखाने के लिए खुशी ज़ाहिर करती है और फिर व्यंग्य से पूछती है—

पट्टी कौन बन्हेगा

हाकिमा पट्टी, दे कौन बन्हेगा[4] ।

अब हाकिम की बारी थी । भागिन समझती थी कि अब हाकिम से कोई बात न बन पड़ेगी । अब हाकिम ने पहले तो भागिन की तरफ़ ऐसी नज़रों से देखा कि वह शर्मा गई । जब शर्म के मारे भागिन के गाल लाल हो गये तो उसने कहा—

पट्टी तूँ बन्हेगी

भागिनें पट्टी, पट्टी नी तूँ बन्हेगी ।

ओ हो हो हो ।"[5]

"क्यों, मेरा गाना पसन्द आया ?"

---

१. हाँ री भागिन, हम दिल्ली से बिल्ली लायेंगे बिल्ली । २. बिल्ली क्या करेगी ए हाकिम, बिल्ली क्या करेगी ? ३. हाँ री, बिल्ली पंजे मारेगी । ४. पट्टी कौन बाँधेगा ए हाकिम, फिर पट्टी कौन बाँधेगा ? ५. पट्टी तू ही बाँधेगी भागिन, पट्टी तो तू ही बाँधेगी ।

गाना तो ख़ैर जो था सो था ही, लेकिन गाने में जो ज़िंदगी और ललकार और उसके अन्दाज़ में जो निर्भीकता थी, वह मुझे बहुत पसन्द आई ।

उसने पूछा—"तुम भी गाना जानते हो ?"

मैं गाना नहीं जानता था । काश मैं उसे गाना गाकर ही सुना सकता ! मैंने बातों ही बातों में पूछा—"वह मुसलमान कौन था ?"

वह हँस पड़ा—"वह मेरा जिगरी दोस्त है । समझे ? बहुत दिन के बाद बड़े घर से आया था । अच्छा ही हुआ जो मुझे मिल गया ।"

"बड़ा घर क्या होता है ?"

"अरे, तुम बड़ा घर नहीं जानते । अफ़सोस, तुम बड़े घर कभी नहीं जा सकोगे । सिर्फ़ बड़े आदमी ही बड़े घर में जा सकते हैं......बस, सरदार बहादुर ! यह समझ लो कि बड़ा घर सिर्फ़ उन्हीं लोगों के लिए होता है जो सरकार की सेवा करते हैं । जब वे सेवा करते-करते थक जाते हैं तो उन्हें आराम करने के लिए बड़े घर में भेज दिया जाता है । वहाँ वे इतमीनान से बैठ कर सरकार और परजा की सेवा के नये-नये ढंग सोचा करते हैं और जब आराम करने के बाद सरकार के बड़े घर से निकलते हैं तो फिर नये-नये ढंग से बड़े ज़ोर-शोर से प्रजा की सेवा करते हैं । प्रजा सरकार से उनकी ज़ोरदार सिफ़ारिश करती है । सरकार जितनी ज़्यादा ख़ुश होती है, उतनी ही जल्दी उन सेवकों को बड़े घर में भेज देती है । जो व्यक्ति जितनी ही ज़्यादा मुस्तैदी के साथ सेवा करता है, उतने ही ज़्यादा दिनों के लिए उसे आराम करने का मौक़ा दिया जाता है ।"

मैं बहुत देर तक अपनी समझ के अनुसार बड़े घर के विषय में सोचता रहा । जस्सासिंह अपनी बात जारी रखते हुए बोला—मेरे उस दोस्त का नाम नूर है । उसके बड़े घर में जाने से पहले एक बार हम दोनों एक गाँव में रात के समय किसी के घर में घुस गये । हर तरफ़

सन्नाटा था। हम हर आहट पर कान लगाये हुए थे। कोई असाधारण आवाज़ न सुनाई दी। लेकिन जब हम बाहर निकलने लगे तो क्या देखते हैं कि जिस मकान के अन्दर हम घुसे हुए थे, उसे गाँव के लोगों ने चारों ओर से घेर रक्खा है......।"

"आप लोग उस घर में घुसे ही क्यों थे?"

"ओहो! देखो सरदार, ऐसी बातों में टोकना अच्छा नहीं होता। बस तुम यह समझ लो कि किसी न किसी तरह, किसी न किसी कारण से, किसी न किसी आदमी के घर के अन्दर घुस गये थे। घर वाले सोये हुए थे। पता नहीं, घर वलों की नींद कैसे खुल गई और वे सब गाँव वालों को किस समय बुला लाये...। इतने आदमियों का मजमा देखकर हम बहुत घबरा गये। चुपके से दबककर बैठ रहे। सोचते थे कि कैसे सही सलामत बाहर निकलें। कोई सूरत नहीं दिखाई पड़ती थी। फिर यह भी खटका लगा हुआ था कि यहीं पड़े-पड़े सुबह न हो जाय। या फिर वे लोग कहीं से पुलीस को ही न बुला लायें। अतएव हम दोनों ने सलाह की और एक दूसरे की ओर पीठ करके बाहर निकले तो देखा कि आँगन और गली में आदमी ही आदमी खड़े हैं। लाठियाँ हमारे हाथों में थीं। बस हमने लाठियाँ चलानी शुरू कर दीं। हमारी जान पर बनी हुई थी। इतने ज़ोर से हमने आज तक लाठी नहीं घुमाई थी। लोगों में हलचल मच गई। लाठियों की मार से बचने के लिए वे इधर-उधर हटने लगे। एक भागा तो भगदड़ मच गई। लेकिन जब उन लोगों ने देखा कि हम सिर्फ़ दो ही आदमी हैं तो फिर उनका हौसला बढ़ा और वे हमारे करीब पहुँचने की कोशिश करने लगे। हम भी लुहूलुहान हो गये। उनके घेरे में से निकल कर जो हम भागे तो आठ कोस तक भागते ही चले गये जिसमें कि ये लोग घोड़ों पर सवार होकर हमें घेर न लें...समझे, मेरा यही दोस्त मेरे साथ था। अगर कोई और होता तो वहीं प्राण-त्याग देता।"

मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा—क्या सारे गाँव में एक भी आदमी ऐसा न निकला जो आपका मुकाबला कर सकता ?

"कहाँ भैया ! हमारा मुकाबला करने के लिए तो उनके पास-पड़ोस के गाँव में से भी कोई नहीं निकल सकता। हाँ, अगर कहीं मेरे मामा जैसा कोई आदमी होता वहाँ तो फिर हमारी दाल नहीं गल सकती थी।"

"क्या आपके मामा बहुत ताक़तवर आदमी हैं ?"

"ताक़तवर ?—मेरे मामा इतने ताक़तवर हैं कि इधर-उधर के लोग उन्हें 'लोहा' कहते हैं। बड़ा भारी डीलडौल है उनका ! क़द में तो ख़ैर मुझसे भी कुछ कम ही हैं, लेकिन उनकी ललकार ही ऐसी ज़ोरदार होती है कि किसी आदमी की हिम्मत नहीं पड़ती कि सामने सिर भी उठा सके। उनका इलाक़े भर में बड़ा दबदबा है......।"

"क्या वे कभी चोरों के साथ भी लड़ा करते हैं। कभी कोई डाकू पकड़ा उन्होंने ?"

"उन्होंने बड़े-बड़े काम किये हैं। उनके जीवन की एक छोटी सी पर बहुत ही दिलचस्प घटना सुनाता हूँ। एक बार गर्मियों में रात के समय वे गाँव से बाहर मवेशियों के बाड़े के फाटक के पास चारपाई डाले सो रहे थे। उनके सब मवेशी बाड़े के अंदर बन्द थे। इतने में वहाँ चोर आ निकले और उन्हें गहरी नींद में बेसुध पाकर अन्दर घुस गये और बैलों की एक बहुत अच्छी जोड़ी निकाल कर चल दिये। अभी वे बैल हाँकते हुए कोई चालीस पचास कदम ही गये होंगे कि एकाकए मेरे मामा की आँख खुल गई और वे तुरन्त भाँप गये कि चोर उनके मवेशी लिए जा रहे हैं। वे उठकर बैठ गये और पुकार कर बोले—"भाई, तुम जो कोई भी हो...मेरी बात कान खोलकर सुन लो...तुम मेरे जानवर तो लिये जा रहे हो, बड़ी खुशी से ले जाओ, लेकिन इतनी बात याद रहे कि तुम इन्हें जहाँ कहीं भी ले जाओगे कल दिन के अन्दर-अन्दर अगर

में अपने जानवर वापस न ले लूँ तो मैं अपने बाप का बेटा नहीं...और यह भी सुन लो कि मेरा नाम दसौंधासिंह है।"

वे आदमी कुछ देर तक चुपचाप खड़े सलाह करते रहे फिर उनमें से एक आदमी ऊँची आवाज़ में बोला—"दसौंधासिंह सरदार! हमें मालूम नहीं था कि यह तुम्हारे बैल हैं। न हमें यह मालूम था कि चारपाई पर तुम्हीं सोये पड़े हो। हमने तुम्हारा नाम सुन रक्खा है, इसलिए हम यह बैल इसी जगह छोड़े जाते हैं।" और उन्होंने दोनों बैल बाड़े की तरफ़ हाँक दिये और स्वयं अपनी राह पर रवाना हो गये।

मुझे उसकी बातें सुनने में बड़ा मज़ा आ रहा था। सुनसान रात में साँडिनी के गले में पड़ी हुई घंटियों की टन-टन में उसकी गूँजती हुई आवाज़ एक खास आकर्षण रखती थी। मैं उससे कोई बात पूछने ही लगा था कि एक बड़े ज़ोर की फुंकार सुनाई दी। देखा तो परे एक ऊँची सी जगह पर एक फनदार साँप फन उठाये लहरा रहा है।

मेरे शरीर में बिजली सी दौड़ गई। जस्सासिंह ने साँडिनी रोक ली। कुछ देर तक वह साँप की तरफ़ देखता रहा—"यह साँपों का राजा नाग है। उफ़, कितना काला है। अगर यह किसी को काट ले तो उसे पानी माँगने की मुहलत न मिले।"

फिर उसने मुझे साँडिनी पर बैठे रहने की हिदायत की और स्वयं नीचे उतर गया। साँप अभी तक फन उठाये लहरा रहा था। जस्सासिंह ने कन्धे से चादर उतार कर बायें हाथ में पकड़ ली और दाहिने हाथ में लाठी लेकर वह आगे बढ़ा, वह फूक-फूक कर कदम रख रहा था। उस समय वह एक असील मुर्गे की भाँति चौकन्ना हो रहा था। उसकी घनी भवों के नीचे उसकी तेज़ आँखें चमक रही थीं। उसने अपना लोहे का कड़ा कलाई से पीछे हटाकर बाज़ू पर फँसा लिया। साँप के पास पहुँचकर वह रुक गया और साँप की आँखों से आँखें मिला कर खड़ा हो गया।

मैं डर गया। मैंने उसे आवाज़ देकर वापस चले आने के लिए कहा, लेकिन उसने मेरी ओर देखे बिना चुप रहने का इशारा किया और स्वयं साँप के और भी निकट चला गया।

मैंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ा कर देखा। कोई आदमी, जानवर या पक्षी दिखाई नहीं पड़ता था। चन्द्रमा का प्रकाश अब कुछ तेज़ हो गया था। बबूल के पेड़ चुपचाप खड़े थे। उनकी शाखाओं की कोमल से कोमल कोपलें तक निश्चल थीं। वे ऐसी लापरवाही के साथ खड़े थे, मानो उन्हें इस बात से दूर का भी सम्बन्ध न हो। उस सुनसान स्थान पर आदमी और नाग का मुक़ाबला मेरे लिए बिलकुल नई और विचित्र चीज़ थी। मुझे विश्वास था कि साँप धोके से जस्सासिंह की नंगी टाँग पर दाँत मारेगा और वह इसी समय तड़प-तड़प कर मर जायगा। मेरा गला सूख रहा था। मैं चाहता था कि वह वापस चला आये, लेकिन वह मेरी बात सुनता ही कब था। अब वह औरत भी बहुत पीछे रह गई थी, नहीं तो मैं भाग कर उसे ही बुला लाता। वह तो उसे रोक सकती थी।

जस्सासिंह के होठों पर मुस्कराहट खेल रही थी। वह उस समय एक चंचल बच्चे के समान ज़िद्दी और खिलन्दरा दिखाई पड़ रहा था। साँप के पास खड़े होकर वह उचक कर अपनी चादर उसके फन के पास हिलाने लगा। साँप ने भी फन बढ़ा-बढ़ाकर दो-तीन बार उसे काटने की कोशिश की। एक बार जो उसने ज़रा बढ़कर चादर उसके क़रीब की तो निडर साँप उछल कर चादर से लिपट गया। जस्सासिंह ने चादर ज़मीन पर फेंककर उसे लाठी से पीटना शुरू किया। एक क्षण के लिए साँप उसके पाँव के पास दिखाई दिया, फिर वह भाग निकला। जस्सासिंह भी उछलकर उसके पीछे-पीछे हो लिया। फिर वह समतल रेतीली धरती पर एक दूसरे के पीछे भागे। साँप पलट-पलटकर उस पर हमले करता था। थोड़ी ही देर में वे बहुत दूर निकल गये। जस्सासिंह की लाठी बार-बार

हवा में उठती थी और फिर एकाएक जस्सासिंह ज़मीन पर गिर पड़ा......उठा और फिर गिर पड़ा......मेरा धड़कता हुआ दिल धक् से होकर रह गया। शायद वह स्त्री जिससे वह थोड़ी देर पहले हँस-हँसकर बातें कर रहा था अभी तक पेड़ के तने के साथ लगी खड़ी हो... जस्सासिंह फिर उठ खड़ा हुआ और फिर बड़े-बड़े डग भरता हुआ मेरे क़रीब आया। मैंने घबराकर पूछा—"क्या साँप ने आपको काट खाया था?"

"नहीं तो", वह हँसकर बोला—"वहाँ गीली ज़मीन थी। मेरा पाँव फिसल गया। देखो यह मेरा कच्छा भी कीचड़ में ख़राब हो गया...गिरकर मैं उठने लगा तो फिर गिर गया।"

"तो साँप भाग गया?"

"नहीं भाई, साँप को भागने भी देता मैं? तुम जानते नहीं, अगर यह साँप एक बार घायल होकर बच निकले तो अपने दुश्मन से बदला ज़रूर लेता है। इसलिए मैं उसके पीछे भागा था। अब तो मैंने उसका सिर अच्छी तरह कुचलकर रख दिया है...आओ नीचे उतरो। तुम्हें भी साँप दिखलावें...।"

जब हम मरे हुए साँप के निकट पहुँचे तो देखा कि कम से कम छः हाथ लम्बा साँप था। पीठ बिलकुल स्याह थी। पेट कुछ सफ़ेद था। बल खाया हुआ मुर्दा साँप अब भी इतना भयानक दिखाई देता था कि उसके पास जाने की हिम्मत न होती थी।

इस बात की पूरी तसल्ली कर लेने के बाद कि साँप सचमुच बिलकुल मर चुका है, हम वापस आकर साँडिनी पर सवार हो गये।

मैंने जीवन में इस तरह की रोमाँचकारी घटनाएँ कम ही देखी थीं। मुझे अभी तक पसीना छूट रहा था। जस्सासिंह का साहस मूर्खता की हद से आगे बढ़ गया था लेकिन वह पूरे विश्वास के साथ नीचे उतरा था और उसे यक़ीन था कि वह साँप को मार डालेगा। लेकिन मैं

रह-रहकर सोच रहा था कि अगर कहीं साँप जस्सासिंह को काट ही खाता तो क्या होता ?

जस्सासिंह ने साँडिनी को ललकार कर हाँकते हुए कहा—"यह साँप बहुत ज़ालिम होता है। यह गाय का थन मुँह में लेकर दूध पी जाता है और कभी-कभी यह मनुष्य जाति का दुश्मन बन बैठता है उस वक्त इसकी कारस्तानियाँ बहुत बढ़ जाती है। जो आदमी दिखाई दे, उसे काटने से नहीं चूकता। ऐसा साँप बहुत ही खतरनाक होता है और फिर सबसे मुश्किल यह होता है कि यह जानवर भी छोटा-सा होता है और है बहुत चालाक और मक्कार। इसको मार डालना भी आसान नहीं। बस ऐसे साँप से वाह गुरू ही बचाये।"

इसी तरह बातें करते हुए चले जा रहे थे कि जस्सासिंह ने कहा—"बोलो यह सामने तुम्हारा गाँव है न ?"

मैं उसकी बातों में ऐसा मग्न था कि मुझे इधर-उधर का कुछ खयाल ही न रहा था। अब हम गाँव के कब्रस्तान के पास से गुज़र रहे थे। झड़बेरियों के बीच में उभरी-उभरी क़ब्रें चाँदनी रात में और भी अधिक भयानक दिखाई दे रही थीं। सामने नीम के पेड़ों के नीचे चमारों का कुआँ भी नज़र आ रहा था। कुएँ की चर्खी अँधेरे में किसी नक़ाबपोश आदमी के समान दिखाई दे रही थी। गाँव से बाहर कूड़े-करकट के ढेर थे, जहाँ दिन के समय मुर्गियाँ और उनके नन्हें-नन्हें बच्चे ज़मीन कुरेदते फिरा करते थे। दूर छोटे-छोटे पेड़ों का झुन्ड था जो ऐसे दिखाई देते थे जैसे चोर गाँव में घुसने से पहले आपस में सलाह-मशविरा कर रहे हों।

जब हम गाँव में पहुँच गये तो गाँव के ठीक सिरे पर बने हुए रहट के पास जस्सासिंह ने अपनी साँडिनी बिठा दी। मेरी सायकिल उतारी, फिर स्वयं उतरा और मुझे भी उतारा। मेरी गठरी मेरे हवाले कर दी।

गाँव पर उस समय सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग अपने कच्चे

मकानों की छतों पर पड़े सो रहे थे। सिर्फ़ गाँव के दूसरे सिरे से कुत्तों के भौंकने की हल्की-हल्की आवाज़ें आ रही थीं।

उसने चलते हुए रहट से पानी पिया। पानी की बूँदे उसकी मूँछों से नीचे की तरफ लटककर काँपने लगीं। मैंने सायकिल पास की एक दीवार के साथ खड़ी कर दी। गठरी भी उसी पर रख दी। जस्सासिंह ने मुस्कराकर मेरी ओर देखा। मैं उससे इतना घुल-मिल चुका था, मानों हम वर्षों से एक-दूसरे को जानते हों। मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि भविष्य में हम जिन्दगी भर साथ-साथ रहेंगे। उसने बेतकल्लुफ़ी के साथ पूछा—"कहो अब तो घर पहुँच जाओगे, रास्ता तो न भूलोगे?"

मैंने शर्माकर कहा—"जी नहीं, अब मैं पहुँच जाऊँगा।"

मैं उसको धन्यवाद देना चाहता था, लेकिन समझ न सका कि वह भाव कैसे प्रगट करूँ! मैं यह सोच ही रहा था कि उसने पगड़ी के शिमले से मूँछें और दाढ़ी पोंछते हुए कहा—"अच्छा, अब तुम घर को जाओ, मैं भी जाता हूँ।"

मैंने उसकी पगड़ी के शिमलों की तरफ़ देखा। एक कान के पास लटक रहा था और दूसरा हवा में उठा हुआ फूल की तरह खिला हुआ था मैंने सिर से पाँव तक उसको देखा। वह एक भारी खम्भे की तरह दिखाई दे रहा था। उसने अपने दोनों काठ के से हाथों में मेरा कमज़ोर और छोटा सा हाथ लेकर मिलाया। इस तरह इतने बड़े आदमी से हाथ मिलाने में मुझे गर्व का अनुभव हुआ। मुझे यह स्वप्न में भी ख़याल न था कि वह एकदम वापस जाने पर तुल जायगा। मैंने कहा—"आइए हमारे घर चलिए। घर के लोग आपको देखकर बहुत ख़ुश होंगे।"

यह बात सुनकर वह बड़ी ज़ोर से हँसा। उसकी हँसी रुकने ही में न आती थी। उसने उँगली से अपनी ओर इशारा करते हुए कहा—"क्या कहते हो!......मुझे देखकर ख़ुश होंगे?...ह-ह-ह-हा!"

हँसते-हँसते उसी नाक की नोक सुर्ख़ हो गई।

मैंने उसकी उँगली पकड़ कर ले जाने के लिए आग्रह किया तो फिर वह कहने लगा—"आज मुझे बहुत ज़रूरी काम है, इसलिए तुम जाओ। मैं फिर कभी आऊँगा। तुम्हारा नाम तो मैं जानता ही हूँ......।"

मैंने उँगली उठाकर कहा—"ज़रूर"?

"ज़रूर", वह हँसने लगा।

इसके बाद वह अपनी कुल्हाड़ी सँभालता हुआ साँडिनी पर सवार हुआ। मैं उसकी तरफ़ देखता रहा। यहाँ तक कि वह क्षितिज में विलीन हो गया—गर्द के बादल उड़ते रह गये।

लेकिन वह फिर कभी नहीं आया...कभी नहीं!

'मन्टो'

टेढ़ी लकीर

अगर सड़क सीधी हो—बिलकुल सीधी तो उस पर चलते समय उसके पाँव जैसे मनों भारी हो जाते थे। वह कहा करता था, जीवन सीधी सड़क नहीं है। वह तो पेचदार मार्गों से भरा हुआ है। जब हम दोनों बाहर घूमने निकलते तो वह कभी सीधे रास्ते पर न चलता। उसे बाग का वह कोना बहुत पसन्द था जहाँ लहराती हुई पेचदार क्यारियाँ बनी हुई थीं।

एक बार उसने अपनी टाँगों को छाती के साथ जोड़कर बड़े सुहावने अन्दाज में मुझसे कहा था—"अब्बास, यदि मुझे और कोई काम न हो तो सच कहता हूँ, मैं अपना सारा जीवन काश्मीर की पहाड़ी सड़कों पर चढ़ने उतरने में बिता दूँ—क्या पेंच हैं कि बस चक्कर खाते रह जाइए!

सीधे रास्ते पर तुम हर आनेवाली चीज को दूर से ही देख सकते हो, परन्तु वहाँ प्रत्येक चीज तुम्हारी आँखों के सामने बिलकुल अचानक ही आयेगी—मृत्यु की तरह अचानक और रहस्य से भरी हुई !"

वह एक पतला-दुबला नवयुवक था—अत्यधिक दुबला। उसको एक नजर देखने से बहुधा ऐसा प्रतीत होता था मानो अस्पताल के किसी बिस्तर पर से कोई दुर्बल रोगी उठकर चला आया है। उसकी आयु मुश्किल से बाईस वर्ष के लगभग होगी, किन्तु किसी-किसी समय वह इससे बहुत अधिक आयु का प्रतीत होता था। उसमें एक विचित्र बात यह थी कि कभी-कभी उसको देखकर मैं यह सोचने लगता था कि वह बच्चा बन गया है। उसमें एकाएक इतना परिवर्तन हो जाया करता था कि मुझे अपनी आँखों पर सन्देह होने लगता था।

अन्तिम भेंट से दस दिन पूर्व जब वह मुझे बाजार में मिला तो मैं उसे देखकर चकित रह गया। वह हाथ में एक बड़ा-सा सेब लिये उसे दाँतों से काटकर खा रहा था। उसका चेहरा बच्चों की भाँति एक अकथनीय प्रसन्नता से तमतमाया हुआ था। उसका सारा चेहरा जैसे गवाही दे रहा था कि सेब बहुत ही स्वादिष्ट है।

सेब के रस से भरे हुए हाथों को बच्चों की तरह अपनी पतलून से साफ करने के बाद उसने मेरा हाथ बड़े जोर से दबाया और कहा—"अब्बास, सेब वाला दो आने माँग रहा था, पर मैंने इसे एक ही आने में खरीदा।"

उसके होंठ हँसी के कारण थरथराने लगे। फिर उसने जेब से एक चीज निकाली और मेरे हाथ में देते हुए कहा—"तुमने लट्टू बहुत देखे होंगे, पर ऐसा लट्टू कभी देखने में न आया होगा—ऊपर का बटन दबाओ—दबाओ—अरे दबाओ !"

उसे देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था, किन्तु उसने बिना मेरी प्रतीक्षा किये स्वयं ही लट्टू का बटन दबा दिया और लट्टू मेरी हथेली

पर से उछलकर सड़क पर नाचने लगा। प्रसन्नता के आवेश में मेरे मित्र ने भी उछलना शुरू कर दिया। उसने कहा—"देखो अब्बास, देखो—इसका नाच !"

मैंने लट्टू की ओर देखा जो मेरे सिर की भाँति घूम रहा था। हमारे चारों ओर बहुत से आदमी जमा हो गये थे। शायद वे यह समझ रहे थे कि मेरा मित्र अब दवाइयाँ बेचना शुरू करेगा।

"लट्टू उठाओ और चलें। लोग हमारा तमाशा देखने के लिए इकट्ठा हो रहे हैं !"

मेरे स्वर में शायद थोड़ी-सी तेजी थी। मेरा स्वर सुनकर उसकी सारी प्रसन्नता फीकी पड़ गई और उसके चेहरे की तमतमाहट विलीन हो गई। वह उठा और उसने मेरी ओर कुछ इस ढङ्ग से देखा कि मुझे प्रतीत हुआ मानो एक नन्हा-सा बच्चा रोनी सी सूरत बनाकर कह रहा है—मैंने तो कोई बुरी बात नहीं की, फिर मुझे क्यों इस तरह झिड़का गया !

उसने लट्टू वहीं सड़क पर छोड़ दिया और मेरे साथ चल पड़ा। घर तक हम दोनों में और कोई बात नहीं हुई। गली के मोड़ के पास पहुँचकर मैंने उसके मुँह की ओर देखा—इस थोड़े से समय में ही उसके चेहरे में परिवर्तन उत्पन्न हो गया था। ऐसा प्रतीत होता था मानो कुछ अज्ञात चिन्ताओं के बोझ ने उसे एकाएक बूढ़ा बना दिया है।

मैंने पूछा—"क्या सोच रहे हो ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं यह सोच रहा हूँ कि यदि ईश्वर को मनुष्य का जीवन बिताना पड़ जाये तो क्या हो ?"

वह इसी प्रकार की बेढंगी बातें सोचा करता था। कुछ लोग समझते थे कि वह अपने को निराला सिद्ध करने के लिए इस तरह की बातें किया करता है, किन्तु यह बात गलत थी। वास्तव में उसकी रुचि ऐसी चीजों

की ओर ही अधिक रहती थी जो किसी दूसरे की कल्पना तक में नहीं आ सकती थीं।

आप विश्वास नहीं करेंगे, लेकिन उसको अपने शरीर पर रिसता हुआ घाव बहुत अच्छा लगता था। वह कहा करता था—"यदि मेरे शरीर पर सदा के लिए कोई घाव बन जाये तो कितना अच्छा हो—मुझे दर्द में बड़ा आनन्द आता है!"

मुझे अच्छी तरह याद है कि स्कूल में एक दिन उसने मेरे सामने अपनी बाँह को तेज ब्लेड से घायल कर लिया था—केवल इसलिए कि कुछ दिन उसमें दर्द होता रहे। टीका वह कभी इस ख्याल से नहीं लगवाता था कि उससे हैजा, प्लेग, या मलेरिया आदि का खतरा नहीं रहता। वह तो इसी लिए टीका लगवाता था कि दो-तीन दिन तक उसका शरीर बुखार के कारण तपता रहेगा। इस तरह जब कभी उसे बुखार का निमन्त्रण देना होता था तो मुझसे वह कहा करता था—"अब्बास, मेरे घर एक मेहमान आनेवाला है, इसलिए मुझे तीन दिन तक फ़ुरसत नहीं मिलेगी।"

एक दिन मैंने उससे पूछा कि तुम आये दिन टीका क्यों लगवाते हो? तो उसने उत्तर दिया—"अब्बास, मैं तुम्हें नहीं बता सकता कि टीका लगवाने से जो बुखार चढ़ता है, उसमें कितना रोमांस होता है। जब जोड़-जोड़ में दर्द होता है और बदन टूटता है तो ऐसा जान पड़ता है मानो तुम किसी अत्यन्त जिद्दी आदमी को अपने बस में करने की चेष्टाकर रहे हो। फिर बुखार बढ़ जाने पर जो सपने दिखाई पड़ते हैं, वे कितने बिखरे-बिखरे से होते हैं—बिलकुल हमारे जीवन की भाँति। एक क्षण तो तुम यह देखते हो कि तुम्हारा विवाह किसी सुन्दर युवती से होने जा रहा है, दूसरे ही क्षण वह युवती तुम्हारे बाहुपाश में एक मोटा तगड़ा पहलवान बन जाती है।"

मैं उसकी विचित्र बातें सुनने का अभ्यस्त हो गया था, किन्तु फिर भी एक दिन मुझे उसके दिमाग के सही होने पर सन्देह होने लगा। पिछली मई में मैंने उससे अपने गुरु का परिचय कराया। उनका मैं अत्यधिक आदर करता था। डाक्टर शाकिर ने बड़े प्रेम से हाथ मिलाते हुए उससे कहा—"मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ।"

"इसके विपरीत मुझे आपसे मिलकर कोई प्रसन्नता नहीं हुई।" अपने मित्र का यह उत्तर सुनकर मैं बहुत लज्जित हुआ। आप अनुमान कीजिये कि उस समय मेरा क्या हाल हुआ होगा। लज्जा के मारे मैं अपने गुरु के सामने गड़ा जा रहा था और वह बड़े आराम के साथ सिगरेट का धुआँ छोड़ता हुआ कमरे में लगे एक चित्र ओर देख रहा था।

डाक्टर शाकिर को मेरे मित्र का यह व्यवहार बहुत बुरा लगा और एक ओर ले जाकर मुझसे बड़े कड़े स्वर में कहा—"जान पड़ता है, तुम्हारे दोस्त का दिमाग ठिकाने नहीं है।"

मैंने उसकी ओर से स्वयं क्षमा माँगी और बात समाप्त हो गई। मैं वास्तव में बहुत ही लज्जित था कि डाक्टर शाकिर को मेरे कारण इतनी भद्दी बात सुननी पड़ी।

संध्या समय मैं अपने मित्र के पास यह निश्चय करके गया कि उससे साफ-साफ शब्दों में मालूम करूँगा कि उसने ऐसी हरकत क्यों की। वह मुझे लाइब्रेरी के बाहर मिला। मैंने छूटते ही उससे कहा—"तुमने आज डाक्टर शाकिर का बड़ा अपमान किया। मलूम होता है, तुम्हारी शराफत का दिवाला निकल गया है।"

वह मुस्करा दिया। फिर बोला—"अरे, छोड़ो उस किस्से को—आओ, कोई और मतलब की बात करें।"

यह सुनकर मैं उस पर बरस पड़ा। चुपचाप मेरी सब बातें सुनकर उसने कहा—"लेकिन क्या मैं झूठ बोलता—उससे मिलकर मुझे वास्तव

में जरा-सी भी खुशी न हुई। इसी लिए मैंने उसे साफ-साफ कह दिया। अगर मुझसे मिलकर किसी को खुशी होती है तो यह आवश्यक नहीं कि उससे मिलकर मुझे भी खुशी ही हो। और फिर पहली ही भेंट में हाथ मिलाते ही मैंने उसके दिल में खुशी पैदा कर दी—यह मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारे डाक्टर साहब उस दिन बीस-पचीस आदमियों से मिले और हर आदमी से उन्होंने यही कहा कि आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई। क्या यह सम्भव है कि प्रत्येक व्यक्ति एक ही प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करे! तुम मुझसे ऐसी व्यर्थ की बातें न किया करो—आओ, अन्दर चलें।"

यन्त्रवत् मैं उसके साथ हो लिया और पुस्तकालय के भीतर पहुँचते ही अपना सब क्रोध भूल गया—बल्कि यह सोचने लगा कि मेरे मित्र ने जो कुछ कहा है, वह सच है। लेकिन तुरन्त ही मेरे मन में ईर्ष्या भी उत्पन्न हुई कि इस आदमी में इतनी शक्ति क्यों है कि वह अपने विचार दूसरों के सामने निस्संकोच प्रकट कर देता है। पिछले दिनों मेरे एक अफसर की दादी मर गई थी और मुझे उसके सामने अपनी इच्छा के विरुद्ध दस पन्द्रह मिनट तक शोक प्रकाश करना पड़ा था। उसकी दादी से मुझे कोई दिलचस्पी न थी। उसकी मृत्यु के समाचार ने मेरे हृदय पर कोई प्रभाव न डाला था। लेकिन यह सब होते हुए भी मुझे बनावटी शोक प्रकट करना पड़ा था। तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि मेरा चरित्र अपने मित्र की अपेक्षा बहुत कमजोर है। इस विचार ने मेरे मन में ईर्ष्या की चिनगारी उत्पन्न कर दी और मैं अपने हृदय में एक अकथनीय कटुता अनुभव करने लगा। किन्तु यह एक क्षणिक भाव था जो वायु के एक तीव्र झोंके की भाँति आया और फिर वैसे ही चला गया। मैं बाद में इस पर लज्जित भी हुआ।

मुझे उससे अत्यधिक प्रेम था, किन्तु इस प्रेम में बिना किसी इच्छा के कभी-कभी घृणा की भी झलक दिखाई पड़ जाती थी। एक दिन मैंने

उसकी स्पष्टवादिता से प्रभावित होकर उससे कहा—"न जाने यह क्या बात है कि किसी-किसी समय में तुमसे घृणा करने लगती हूँ।"

उसने मुझे यह जवाब देकर सन्तुष्ट कर दिया—"तुम्हारा हृदय वैसे तो मेरे प्रेम से पूर्ण है, किन्तु एक ही वस्तु को बार-बार देखकर वह कभी-कभी तङ्ग आ जाता है और किसी दूसरी चीज़ की इच्छा करने लगता है। फिर यदि तुम मुझसे कभी-कभी नफ़रत न करो तो सदा मुझसे प्रेम भी तो नहीं कर सकते—मनुष्य इसी तरह की अनेक उलझनों का पुतला ही तो होता है!"

मैं और वह अपने घर से बहुत दूर रहते थे। एक इतने बड़े नगर में जहाँ जीवन अन्धकारपूर्ण कब्र-सा जान पड़ता था! लेकिन उसे कभी उन गलियों की याद न सताती थी, जहाँ उसने अपना बचपन और अपने यौवन का आरम्भ काल बिताया था। ऐसा लगता था मानो वह इसी नगर में पैदा हुआ हो। मेरे चेहरे को देख कर हर कोई यह जान सकता था कि मैं परदेशी हूँ, किन्तु मेरा दोस्त इन सब बातों से बिलकुल दूर था। वह कहा करता था कि याद बहुत बड़ी कमजोरी है। एक स्थान से स्वयं को चिपका देना ऐसा ही है जैसे एक स्वतन्त्रता-प्रिय साँड को खूँटे से बाँध देना।

इस प्रकार के विचार रखनेवाला व्यक्ति जो हरेक को टेढ़ी नजर से ही देखता हो और प्रचलित रीति-रिवाज के विरुद्ध चलता हो, उसके बारे में यदि आप यह सुनें कि पुरानी रीति के अनुसार उसने विवाह कर लिया है तो क्या आपको इस पर आश्चर्य न होगा? मेरा विश्वास है कि अवश्य होगा।

एक दिन शाम को वह मेरे पास आया और उसने बड़ी गम्भीरता के साथ मुझे अपने निकाह का समाचार सुनाया तो आप विश्वास करें, मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही। मेरे आश्चर्य का कारण यह न था कि वह विवाह कर रहा है। नहीं, मुझे आश्चर्य इस बात पर था कि

उसने कन्या को बिना देखे, पूर्व परम्परा के अनुसार, निकाह की रस्म में सम्मिलित होना कैसे स्वीकार कर लिया! इससे पहले वह उन मौलवियों की हमेशा हँसी उड़ाया करता था जिनका काम निकाह पढ़ना होता है। वह कहा करता था—"यह मौलवी मुझे ऐसे बूढ़े और गठिया के मारे पहलवान मालूम होते हैं जो अपने अखाड़े में छोटे-छोटे बालकों की कुश्ती देखकर अपने जी की हविस पूरी किया करते हैं!"

शादी या निकाह के अवसर पर लोगों के जमघट का भी वह कायल नहीं था, लेकिन उसका निकाह पढ़ा गया। मेरी आँखों के सामने मौलवी ने, जिससे उसको बड़ी चिढ़ थी और जिसको वह बूढ़ा तोता कहा करता था—उसका निकाह पढ़ाया, छुहारे बाँटे और मैं सारी कार्यवाही इस प्रकार देखता रहा मानो सोते में कोई स्वप्न देख रहा हूँ।

निकाह हो गया। दूसरे शब्दों में एक अनहोनी बात हो गई और जो आश्चर्य मुझे पहले हुआ था, वह बाद में बना रहा। किन्तु मैंने उसके बारे में अपने मित्र से कोई चर्चा नहीं की, इस विचार से कि शायद उसे बुरा लगे। परन्तु मन ही मन मैं यह सोचकर प्रसन्न हो रहा था कि आखिर को उसे भी निन्नानवे के फेर में फँसना ही पड़ा।

निकाह करके मेरा मित्र अपने सिद्धांतों से बहुत बुरी तरह फिसला था और उस गड्ढे में सिर के बल आ गिरा था जिसको वह बहुत गन्दा कहा करता था। जब मैंने यह सोचा तो मेरे मन में आया कि अपने मित्र के पास जाऊँ और इतना हँसूं, इतना हँसूं कि पेट में बल पड़ जायँ। किन्तु जिस दिन मेरे मन में इच्छा उत्पन्न हुई, उसी दिन वह दोपहर को मेरे घर आया।

निकाह को तीन महीने बीत गये थे और इस बीच न-जाने क्यों वह कुछ उदास-उदास-सा रहता था। उसका चेहरा पिघले हुए तांबे की तरह चमक रहा था और उसकी नाक, जो कुछ दिन पहले मियान के भीतर छिपी

तलवार का दृश्य उपस्थित करती थी, अब इतनी उभर आई थी कि उसके चेहरे पर जैसे एक उसी का आधिपत्य दिखाई पड़ता था।

उसने मेरे कमरे के भीतर प्रवेश किया और सिगरेट सुलगाकर मेरे पास बैठ गया। उसके होठों के कोने फड़क रहे थे। अवश्य ही वह मुझे कोई अत्यधिक महत्वपूर्ण बात सुनानेवाला था। मैं चुपचाप प्रतीक्षा करने लगा।

उसने सिगरेट के धुएँ से छल्ला बनाया और उसमें अपनी उँगली गाड़ते हुए मुझसे कहा—"अब्बास मैं कल यहाँ से जा रहा हूँ...।"

"जा रहे हो ?" मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही।

"मैं कल यहाँ से जा रहा हूँ—शायद हमेशा के लिए। मैं तुम्हें यह खबर देने न आता, अगर मुझे तुमसे अपने रुपये लेने हैं जो तुमने मुझसे कर्ज ले रखे थे। तुम्हें याद है न ?"

मैंने जवाब दिया—"हाँ, याद है, पर तुम जा कहाँ रहे हो ? और फिर हमेशा के लिए......?"

"बात यह है कि मुझे अपनी पत्नी से प्रेम हो गया है और कल रात मैं उसे भगाकर अपने साथ लिये जा रहा हूँ। वह इसके लिए तैयार भी गई है।"

यह सुनकर मैं मूर्खों की भांति हँसने लगा और देर तक हँसता रहा। वह अपनी विवाहिता पत्नी को, जिसे वह जब चाहता, उँगली पकड़कर अपने साथ ले जा सकता था, भगाने की सोच रहा था !

मुझे हँसता देखकर उसने कहा—"अब्बास, यह हँसने का मौका नहीं है। कल रात वह अपने मकान के पासवाले बाग में मेरी प्रतीक्षा करेगी और मुझे यात्रा के लिए कुछ रुपया जुटाकर उसके पास अवश्य पहुँच जाना चाहिए। वह क्या कहेगी, अगर मैं अपना वचन पूरा न कर सका। तुम्हें क्या पता, मैंने किन-किन कठिनाइयों के बाद मिलकर उसे इस बात के लिए तैयार किया है।"

मैंने फिर हँसना चाहा, किन्तु उसको बहुत गम्भीर देखकर मेरी हँसी रुक गई और मुझे पूरा विश्वास हो गया कि वह सचमुच अपनी विवाहिता स्त्री को भगाकर ले जा रहा है। कहाँ, यह मुझे कुछ मालूम नहीं हो सका।

मैं अधिक विस्तार में न गया। उसे मैंने वे रुपये दे दिये जो मैंने बहुत दिन पहले उससे उधार लिये थे और यह समझकर अभी तक न दिये थे कि वह लेगा नहीं। पर उसने चुपचाप नोट गिनकर अपनी जेब में डाले और बिना हाथ मिलाये विदा होने ही वाला था कि मैंने आगे बढ़कर उससे कहा—"तुम कहाँ जा रहे हो। देखो, मुझे भुला न देना।"

मेरी आँखों में आँसू आ गये, पर उसकी आँखें बिलकुल सूखी थीं।

"मैं कोशिश करूंगा।" यह कहकर वह चला गया और मैं बहुत देर तक जहाँ खड़ा था, वहीं मूर्तिवत् खड़ा रहा।

बाद में जब उसकी ससुरालवालों को पता चला कि उनकी लड़की रातो-रात कहीं गायब हो गई है तो एक आफ़त आ गई। एक हफ़्ते तक तो उन्होंने स्वयं ही इधर-उधर खोज की और किसी को इस घटना की खबर न होने दी, किन्तु बाद में लड़की के भाई को मेरे पास आना पड़ा और मुझे अपना बनाकर उसे सारी रामकहानी सुनानी पड़ी।

वे बेचारे यह सोच रहे थे कि लड़की किसी और आदमी के साथ भाग गई है और लड़की का भाई मेरे पास इस मतलब से आया था कि उनकी तरफ से मैं अपने मित्र को इस अप्रिय घटना से सूचित कर दूँ। मारे मैं गड़ा जा रहा था।

जब मैंने उसको बातें बताई तो आश्चर्य के कारण उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं। यह सुनकर तो उसे बड़ा संतोष हुआ कि उसकी बहन किसी गैर के साथ नहीं, बल्कि अपने पति के साथ ही भागी है। पर

उसकी समझ में यह नहीं आता था कि मेरे मित्र ने व्यर्थ ही इस तरह का काम क्यों किया ?

"बीवी उसी की थी, वह जब चाहता, उसे ले जाता। पर उसके काम से यह मालूम होता है...जैसे...जैसे..."

वह कोई उपयुक्त कारण न बता सका और मैं भी उसको कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सका।

कल सुबह की डाक से मुझे उसका पत्र मिला। पत्र को मैंने कांपते हुए हाथों से खोला। लिफाफे में एक कागज था जिस पर एक टेढ़ी लकीर खिंची हुई थी। शेष कागज कोरा था। लिफाफे को एक ओर रख मैं उसकी तरफ देखने लगा। मुझे ऐसा लगा मानो वह रेखा कह रही है—"यह जीवन सीधी सड़क नहीं है। इसमें ऐसे-ऐसे घुमाव

और सच मानिए, मैं उस टेढ़ी लकीर की ओर एकटक देखता ही

———